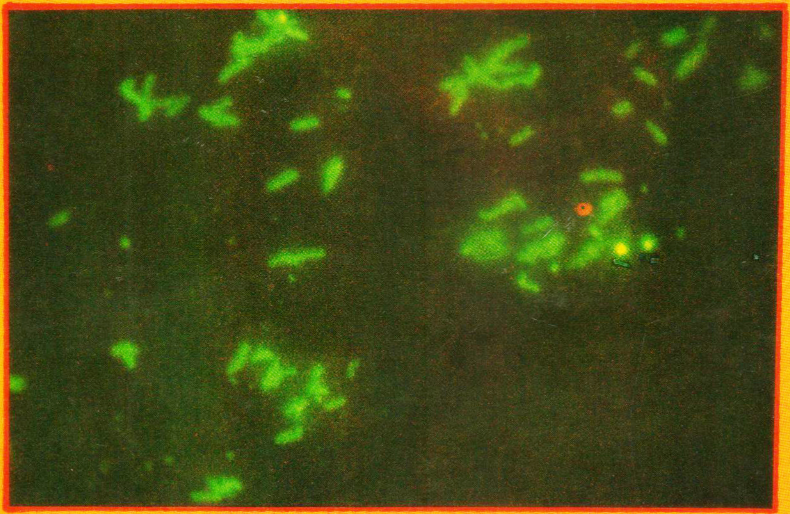
जीवाणुओं की दुनिया और हम



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

पढ़ें और सीखें योजना

जीवाणुओं की दुनिया और हम

दयाशंकर मिश्र

विभागीय सहयोग
रामदुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जनवरी 1993
माघ 1914
PD 10T – SD

प्रकाशन सहयोग

सी० एन० राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी	मुख्य संपादक	**यू० प्रभाकर राव**	मुख्य उत्पादन अधिकारी
शर्मा दत्त	सहायक संपादक	**साई प्रसाद**	उत्पादन अधिकारी
		विकास मेश्राम	सहायक उत्पादन अधिकारी
		राजेन्द्र चौहान	उत्पादन सहायक

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110016	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस चितलापक्कम, क्रोमपेट मद्रास 600064	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन अहमदाबाद 380014	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस 32, बी.टी. रोड, सुखचर 24 परगना 743179

आवरण : अमित श्रीवास्तव

मूल्य रु. 10.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा एडवांस टाइपसैटर्स (इंडिया), 730/8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली 110022, द्वारा लेजर टाइपसैट होकर इण्डिया ऑफसेट प्रैस, ए–1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली 110064 में मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से भी अधिक समय से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा- प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत पढ़ें और सीखें शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएंगी। हम आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही हिंदी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें
(ख) कथा- साहित्य
(ग) जीवनियां
(घ) देश- विदेश परिचय
(ङ) सांस्कृतिक विषय
(च) वैज्ञानिक विषय
(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय- विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत- मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक *जीवाणुओं की दुनिया और हम* के लेखन के लिए प्रो० दयाशंकर मिश्र ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन- जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में पढ़ें और सीखें पुस्तक माला की यह योजना प्रो. अर्जुन देव के मार्ग- दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा. रामजन्म शर्मा, डा. सुरेश पांडेय, डा. हीरालाल बाछोतिया और डा. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं।

इस योजना में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्ग- दर्शन दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति और राजस्थान विश्वविद्यालय में वर्तमान प्रोफेसर- एमेरिटस डा.

रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन और अंतिम संपादन आदि का दायित्व हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. राम दुलार शुक्ल वहन कर रहे हैं।

मैं डा. रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इन पुस्तकों को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन विभाग के कार्यकर्ताओं, विशेषकर विभागाध्यक्ष श्री सी. एन. राव और मुख्य संपादक श्री प्रभाकर द्विवेदी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता- पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

के. गोपालन

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

लेखक का संक्षिप्त परिचय

'जीवाणुओं की दुनिया और हम' के लेखक डा. दयाशंकर मिश्र विगत 30 वर्षों से जीवाणु- विज्ञान के प्राध्यापक के रूप में गोविंद बल्लभ कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के पशु- चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय में कार्यरत रहे हैं। इन्होंने जीवाणु- विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दो वर्षों तक विदेश में प्राध्यापक जीवाणु विज्ञान के पद पर जैम्बिया विश्वविद्यालय में भी कार्य किया।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में जीवाणु- विज्ञान जैसे जटिल विषय को सरल बनाकर जनसाधारण की जानकारी के लिए रोचक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हम अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन सूक्ष्म- जीवाणु- जनित रोगों से ग्रसित होकर कष्ट पाते रहते हैं। लेखक ने अपनी इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया है कि हम इन जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों से कैसे और क्यों ग्रसित होते रहते हैं, इनसे बचने तथा उपचार की क्या विधियाँ हैं, टीकों का इन जीवाणु जनित रोगों के बचाव में क्या महत्व है, इन रोगकारी जीवाणुओं को अपने दैनिक जीवन में नष्ट करके कैसे बच सकते हैं। अनुभवी लेखक ने इन जटिल प्रश्नों के उत्तर अपनी पुस्तक में सरल भाषा एवं रोचक ढंग से वर्णित किया है। इस पुस्तक के माध्यम से आप जीवाणुओं के विषय में एक परिचयात्मक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। डा. मिश्र आजकल एक अवकाशप्राप्त वैज्ञानिक के रूप में उपर्युक्त विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं।

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन०सी०ई०आर०टी०) की "पढ़ें और सीखें" योजना के अंतर्गत यह एक छोटा-सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक डा. के. गोपालन ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने- माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए निमंत्रित कर सकूँ। ऐसा मेरा विश्वास है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुँचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बालक राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि है और मेरे लिये यह किंचित आश्चर्य और संतोष की बात है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्क वैज्ञानिक बच्चों के लिए थोड़ा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूँ।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन से विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का एक अंग बन जाए।

यह योजना एन. सी. ई. आर. टी. के वर्तमान निदेशक डा. के. गोपालन की प्रेरणा से चल रही है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूँ।

प्रो. दयाशंकर मिश्र ने इस पुस्तक के लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. रामदुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। प्रो. अर्जुन देव पढ़ें और सीखें संपूर्ण योजना के संचालक हैं। मैं इन दोनों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी में बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें अपने देश की प्रगति एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

रामचरण मेहरोत्रा
अध्यक्ष
'पढ़ें और सीखें योजना'
(विज्ञान)

विषय-सूची

आवरण पारदर्शी

क्षयरोग उत्पन्न करने वाले माइको बैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस का प्रतिदीप्त सूक्ष्म दर्शीय चित्र। संवेदी नर्वतंतु पर आक्रमण करके उसका विनाश करने वाले कुष्ठरोग के जीवाणु माइको बैक्टीरियम लेपरी।

— डा. रमा मुखर्जी, अध्यक्ष, माइक्रो बायोलोजी डिवीजन,

राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान नई दिल्ली के सौजन्य से

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

अध्याय 1

जीवाणुओं की दुनिया और हम – एक परिचय

जीवाणु (Bacteria) ऐसे सूक्ष्म जीवधारी हैं जिन्हें हम सामान्य आँखों से देखने में असमर्थ हैं। ये प्रकृति के अवयवों जैसे - जल, थल और वायु में, हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाले खाद्य पदार्थों में जैसे मांस, मछली, अंडे, दूध तथा अन्य खाद्य पदार्थों में और शरीर में अन्दर बाहर सभी जगह उपस्थित हैं। इनकी सर्वत्रता का अनुमान इनकी सूक्ष्मता के कारण हम आसानी से नहीं लगा सकते। इनकी सूक्ष्मता का अनुमान इससे लग सकता है कि एक मिलीमीटर जगह में 1000 जीवाणु समा सकते हैं।

हमारे शरीर के अंदर जीवाणु बहुत से अंगों जैसे – फेफड़ों, अंतड़ियों, मुँह, नाक और त्वचा पर सामान्य दशा में हर समय मौजूद रहते हैं। अंतड़ियों में जीवाणु वृद्धि करते हैं तथा हमारे भोजन अवशेषों को पचाने में न केवल मदद करते हैं अपितु वे खुद ही पचकर हमारे शरीर के लिए कुछ बहुमूल्य विटामिनों के स्रोत भी बन जाते हैं। परन्तु यदि अंतड़ियों में रोग जनक जीवाणु पहुंच जायें तो अतिसार और आंत्रशोथ की दशा भी यही जीवाणु उत्पन्न कर देते हैं। हमारी त्वचा पर, हाथ की अंगुलियों पर बहुत अधिक संख्या में जीवाणु उपस्थित रहते हैं और हाथों को संदूषित बना देते हैं। इन्ही संदूषित हाथों को

यदि न धोया जाये और इनका उपयोग भोजन करने में किया जाए तो रोगजनक जीवाणु भोजन के साथ शरीर में प्रवेश पा जाते हैं और रोग उत्पन्न कर देते हैं। त्वचा यदि कहीं कट जाये तो त्वचा पर उपस्थित जीवाणु त्वचा में घुसकर घाव को पका देते हैं तथा घाव में पीव बनने लगता है जो कि बहुत ही कष्टकारी होता है।

हमारे चारों तरफ उपस्थित जीवाणु विपरीत परिस्थितियों में तथा शरीर की रोग- रोधक- क्षमता कम होने पर शरीर में तरह तरह के रोग उत्पन्न कर सकते हैं। संदूषित वायु में उपस्थित जीवाणु, मनुष्य में टी० बी०, इन्फ्लुऐंजा, मीजल आदि रोग उत्पन्न कर सकते हैं। संदूषित पानी से कालरा, आंत्रशोथ, पोलियो, जांडिस आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। संदूषित खाद्य पदार्थों जैसे अण्डा, मांस, मछली, मिठाइयाँ, दूध आदि जिनमें जीवाणु उपस्थित रहते हैं , को खाने पर भोजन विषाक्तता हो सकती है और कालरा, आंत्रशोथ जैसे रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

जीवाणु हमारे दैनिक जीवन में कई कार्यों में बहुत उपयोगी भी पाये गये हैं। हमारी अंतड़ियों में उपस्थित जीवाणु तरह तरह के बहुमूल्य विटामिन जैसे बी० काम्पलेक्स बनाते हैं जो कि हमें अनेक रोगों से बचा सकते हैं। इसी प्रकार कोलन में अवशेष भोजन के पचाने में जीवाणु महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। प्रतिदिन काम आने वाले कुछ भोज्य पदार्थ जैसे दही, डबलरोटी, पनीर, सिरका आदि **"उपयोगी जीवाणुओं" की जटिल प्रक्रिया द्वारा ही बनाये जाते हैं।**

हमारे चारों तरफ बिखरे पड़े गंदे, सड़े, गले पदार्थों एवं मलमूत्र आदि को अहानिकारक बनाकर हमें स्वयं स्वस्थ रखने में जीवाणु महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अगर स्वच्छता उत्पन्न करने वाले जीवाणु इस पृथ्वी पर न होते तो मानव चारों तरफ गंदगी के ढेरों से घिरा होता है।

इसी प्रकार जीवाणुओं से जीवन रक्षक दवायें "एंटीबायोटिक" जैसे पेनिसिलीन

स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेरामाइसिन, क्लोरमफेनिकाल, आदि बनाये जाते हैं जिनकी सहायता से मानव ने बहुत से जीवाणुजनित रोगों जैसे – प्लेग, टी. बी. कॉलरा आदि से काफी हद तक मुक्ति पा ली है। हम भाग्यवान हैं कि जीवाणुजनित एंटीबायोटिक युग में पैदा होकर हमने अपने जीवनकाल की रेखा बढ़ा ली है।

जीवाणु कितने सूक्ष्म हैं इसका अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि एक सुई की नोक पर लगभग 500 जीवाणु समा सकते हैं। डच देश के एक चश्मे के व्यापारी एंटोनी- वान- लीवेनहाक ने पानी की एक बूंद में अपने द्वारा बनाये गये एक "सूक्ष्मदर्शी" से सन् 1683 में प्रथम बार इन सूक्ष्मजीवों को देखा। उसने इन्हें "एनिमलक्यूल" कहा और इनके विभिन्न रूपों का वर्णन किया। उसने इनको 300 गुना बड़ा करके भी देखा और इनके अनेक रूप जैसे दण्डाकार, गोलाकार तथा सर्पिल आदि आकार भी बताये। एंटोनी- वान- लीवेनहाक के सिद्धान्तों पर बनाये गये एक सामान्य और "आधुनिक सूक्ष्मदर्शी" से अब जीवाणुओं को 1000 से 2000 गुना बड़ा करके देखा जा सकता है। सूक्ष्मदर्शी का उपयोग अधिक सूक्ष्म जीवाणुओं के अध्ययन के लिए किया जाता है। "इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी" से तो जीवाणुओं को 200,000 गुना बड़ा करके देखा जा सकता है। विषाणु (Virus) तो जीवाणुओं से भी ज्यादा सूक्ष्म होते हैं और मनुष्यों में इन्फ्लुऐंजा, हिपेटाइटिस, पोलियो, "एड्स" नामक भयानक रोग उत्पन्न करते हैं। "एड्स" नामक रोग को तो इस पृथ्वी पर इस शताब्दी का मनुष्यों का एक बहुत ही घातक रोग माना जा रहा है। इसकी रोकथाम के लिए अभी तक न कोई टीका बन सका है और न ही कोई सक्षम उपचार ही निकला है।

जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों की रोकथाम के लिए अब एंटीबायोटिक का प्रयोग बहुत सफलता से किया जा रहा है। गले की बीमारी तथा बच्चों में "न्यूमोनिया" का रोग जो कि "स्ट्रेप्टोकाई" नामक जीवाणुओं से होता है, का इलाज पेनिसिलिन नामक एंटीबायोटिक

से सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसी प्रकार टायफाइड और टी० बी० का उपचार "क्लोरमफेनिकाल एवं स्ट्रेप्टोमाइसिन" नामक एंटीबायोटिक से किया जाता है। परन्तु इन एंटीबायोटिक के लगातार प्रयोग से अब ऐसे जीवाणु उत्पन्न हो चुके हैं जिन पर अब उपयुक्त एंटीबायोटिक का प्रभाव प्रायः खत्म हो चुका है अर्थात् जीवाणु इस सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाले "एंटीबायोटिक" के प्रति अवरोधी बन चुके हैं। इस पर विजय प्राप्त करने के लिए अब हम दूसरे एंटीबायोटिक की खोज करने जा रहे हैं जिससे कि इन अवरोधी जीवाणुओं को शरीर के अंदर नष्ट किया जा सके। लेकिन एक समस्या इन सूक्ष्म जीवाणुओं के कारण मानव के सामने खड़ी हो गयी है और वह है कि शरीर में कुछ एंटीबायोटिक के प्रति एलर्जी उत्पन्न हो जाना। जीवाणुजनित इन समस्याओं को सुलझाने के लिए आज हम चिकित्सा विज्ञान की मदद से जूझ रहे हैं। इन सूक्ष्मजीवाणुओं का और हमारा युद्ध सदियों से जारी है और भविष्य में भी चलता रहेगा।

इस पुस्तक में उपयुक्त विषयों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिससे आप इस विषय पर समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकें और जीवन में जीवाणुओं की रोगकारक क्षमता के प्रति सजग बने रहें।

अध्याय 2

जीवाणुओं के रूप एवं उनकी रचना

जब हम खाना खाने जाते हैं तो हमारे बड़े बूढ़े कहते हैं,"हाथ धोकर खाना खाओ"। ऐसा क्यों ? हम अपने हाथों से तमाम ऐसी चीजों को छूते हैं जिन पर तरह तरह के जीवाणु लगे रहते हैं जो रोग भी उत्पन्न कर सकते हैं। धोने से जीवाणु हाथ से धुलकर बह जाते हैं और इस प्रकार हमारे शरीर में हाथ से भोजन में पहुँच कर रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं की संख्या कम हो जाती है।

इसी प्रकार आपरेशन के लिए जाने वाले डाक्टर के हाथ में दस्ताने, मुंह तथा सिर पर कपड़ा लगा रहता है क्यों ? जब डाक्टर आपरेशन द्वारा शरीर के अंगों को खोलता है तो रक्त और घाव में "पस" बनाने वाले जीवाणु हाथ के द्वारा, सांस के द्वारा और बालों के द्वारा पहुँच सकते हैं और घाव पक सकता है। आपरेशन वाले स्थान में "पस" पड़ने से रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। इसलिए यह सब जीवाणुओं से बचने के लिए किया जाता है।

जीवाणु ऐसे सूक्ष्म जीव हैं जिन्हें हम नग्न आँखों से नहीं देख सकते। इनकी सूक्ष्मता ही इनकी सर्वत्रता का मुख्य कारण है। भार में यह इतने हल्के होते हैं कि हवा में बहुत दिनों तक तैरते रहते हैं और हवा के माध्यम से कहीं भी पहुँच सकते हैं। ऐसा अनुमान

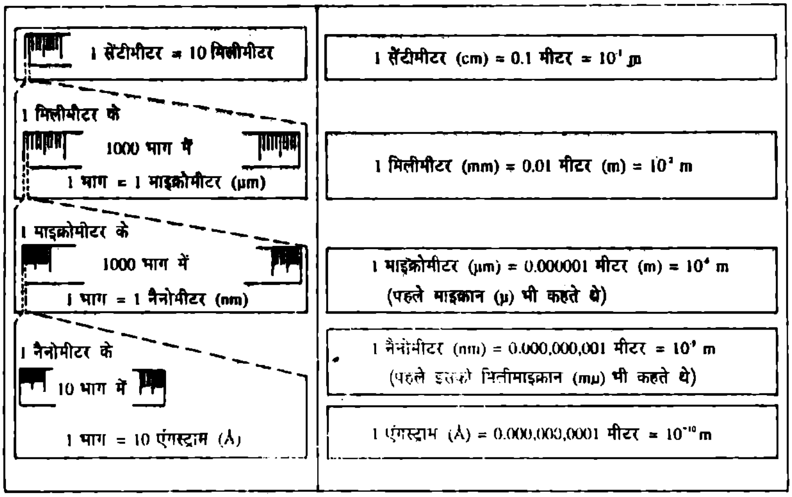
है कि एक जीवाणु का भार लगभग 0.000,000,000,0002 ग्राम होता है और एक मिलीग्राम में लगभग 5 अरब (5×10^9) जीवाणु होते हैं। दूध की एक बूंद के अंदर पूरे दिल्ली शहर की आबादी से अधिक जीवाणु उपस्थित हो सकते हैं। अपनी इस सूक्ष्मता के कारण ही जीवाणु शरीर के किसी अंग में किसी भी जगह आसानी से पहुँच कर और अनुकूल परिस्थिति पाकर रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

जैसा हम प्रथम अध्याय में बता आये हैं कि इन सूक्ष्म जीवाणुओं को देखने के लिए एंटोनी- वान- लीवेनहाक ने सूक्ष्मदर्शी यंत्र सन् 1683 में बनाया था। एंटोनी- वान- लीवेनहाक और अन्य लोगों के सिद्धांत पर बनाये गये अब एक आधुनिक सूक्ष्मदर्शी से जीवाणुओं को 1000 से 2000 गुना बड़ा करके देखा जा सकता है। एक अत्यंत आधुनिक इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से तो जीवाणुओं को 200,000 गुना बड़ा करके देखा जा सकता है। इससे जीवाणु की जटिल आंतरिक रचना भी देखी जा सकती है।

जीवाणुओं के आकार तथा उनके माप : जीवाणुओं के आकार की सूक्ष्मता नापने के लिए जिस पैमाने का उपयोग किया जाता है वह भी अत्यंत सूक्ष्म होता है। दशमलव प्रणाली में बड़ी चीजों की लम्बाई, चौड़ाई नापने के लिए मीटर का प्रयोग होता है। परंतु जीवाणुओं की लम्बाई, चौड़ाई नापने के लिए जिस माप का प्रयोग किया जाता है उसे "माइक्रोमीटर" कहते हैं। एक माइक्रोमीटर ($1 \mu m$) एक मीटर का एक लाखवाँ भाग (10^{-6} मीटर) होता है। इस "माइक्रोमीटर" को पहले "माइक्रान" (μ) भी कहा जाता था परन्तु अब इस नाम का उपयोग कम होता जा रहा है। जीवाणुओं से छोटे सूक्ष्मजीव जिन्हें "विषाणु" कहते हैं, की लम्बाई, चौड़ाई नापने के लिए हम एक और भी छोटे माप का प्रयोग करते हैं जिसे "नैनोमीटर" (nm) कहते हैं। पहले इसको "मिलीमाइक्रान" भी कहते थे। यह एक माइक्रोमीटर का हजारवाँ भाग है तथा मीटर का दस करोड़वाँ भाग (10^{-9}) है। जीवाणुओं एवं विषाणुओं की लम्बाई, चौड़ाई दर्शाने में इन्हीं दोनों सूक्ष्म मापों

का प्रयोग किया जाता है (चित्र 1) | विभिन्न जाति के जीवाणुओं के आकार अलग अलग **होते हैं । स्टेफाइलोकोकाई** और स्ट्रेप्टोकोकाई नामक जीवाणुओं का आकार छोटे छोटे **गोले के रूप में होता है । इन** गोलों का व्यास 0.75 से लेकर 1.25 माइक्रोमीटर तक **होता है । टायफाइड तथा अतिसार** रोग उत्पन्न करने वाले दंडाकार जीवाणु 0.5 माइक्रोमीटर **से 1.0 माइक्रोमीटर चौड़े और** 2-3 माइक्रोमीटर लम्बे होते हैं । मनुष्यों में सिफलिस रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु जिन्हें **ट्रिपेनिमा पेलेडियम** कहते हैं आकार में 0.3 माइक्रोमीटर चौड़े तथा 6 माइक्रोमीटर से 14 माइक्रोमीटर लम्बे होते हैं ।

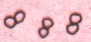
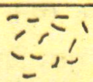
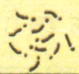
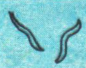
मिथेनोस्पीरिलियम अंगेरी नामक जीवाणु तो लम्बाई में 100 माइक्रोमीटर तक पाये जाते हैं । कोई कोई जीवाणु आकार में अत्यंत ही छोटे होते हैं; जैसे **माइकोप्लाज्मा** नामक जीवाणु तो आकार में **केवल** 0.1 माइक्रोमीटर से लेकर 0.3 माइक्रोमीटर तक पाये गये हैं।



चित्र 1.

जीवाणुओं के रूप और रूप विन्यास : जीवाणु विभिन्न आकार, रूप एवं रूप विन्यासों में पाये जाते हैं। इनका रूप विन्यास कभी-कभी इनकी पहचान में अत्यंत सहायक होता है। जीवाणु मुख्यतः गोलाकार, दंडाकार और सर्पिल रूपों में पाये जाते हैं। गोलाकार जीवाणुओं के अंतर्गत इनके बहुत से रूप विन्यास देखे गये हैं (चित्र 2)। **डिप्लोकोकस न्यूमोनी** नामक जीवाणु गोलाकार होते हैं परन्तु ये दो-दो के समूहों में पाये जाते हैं और न्यूमोनिया का रोग मनुष्यों में उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार **स्ट्रेप्टोकोकाई पायोजिनीज** नामक गोलाकार जीवाणु शृंखला में पाये जाते हैं तथा मनुष्यों में "रयूमेटिक फीवर" और "मेनिनजाइटिस" का रोग उत्पन्न करते हैं। अन्य जीवाणु जो गोलाकार हैं वे हैं **स्टेफाइलोकोकस आरियस** जो कि गुच्छों में पाये जाते हैं तथा मनुष्यों में "भोजन विषाक्तता" उत्पन्न करते हैं। दूसरा है **निसीरिया गोनोरी** जो कि गोलाकार होते हैं और दो-दो के समूह में मिलते हैं और मनुष्यों के जनन अंगों में "गोनोरिया" जैसे भयानक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। दंडाकार जीवाणुओं के अंतर्गत आते हैं — **इस्करीचिया कोलाई** — ये जीवाणु दंडाकार और छोटे-छोटे होते हैं तथा हमारे अंदर "गैस्ट्रोइंटेराइटिस" (अतिसार) जैसे रोग उत्पन्न करते हैं। **साल्मोनिल्ला टायफोसा** नामक जीवाणु भी दंडाकार होते हैं तथा हमारे शरीर में "टायफाइड" जैसा भयानक रोग उत्पन्न करते हैं। तीसरा मुख्य दंडाकार जीवाणु है **कोरीनीबैक्टीरस डिप्फथीरिये** जो कि बच्चों में "डिप्फथीरिया" जैसा भयानक रोग उत्पन्न करता है। यह जीवाणु पतला होता है तथा इसके बदन पर सूक्ष्मदर्शी से 1500 गुना बड़ा करके देखने पर छोटे-छोटे दाने जैसे दिखाई पड़ते हैं। तृतीय रूप जीवाणुओं का कॉमा जैसा और सर्पिल आकार का होता है। इस समूह में **विबिरिओ कॉलरा** जो हैजा उत्पन्न करता है, से हम सभी परिचित हैं। यह सूक्ष्मदर्शी से देखने पर कॉमा जैसा दिखाई पड़ता है। इससे बिमारी होने पर उलटी और दस्त लग जाते हैं और यदि समय पर इलाज न किया जाए तो मृत्यु भी हो सकती है।

जीवाणुओं के रूप एवं उनकी रचना

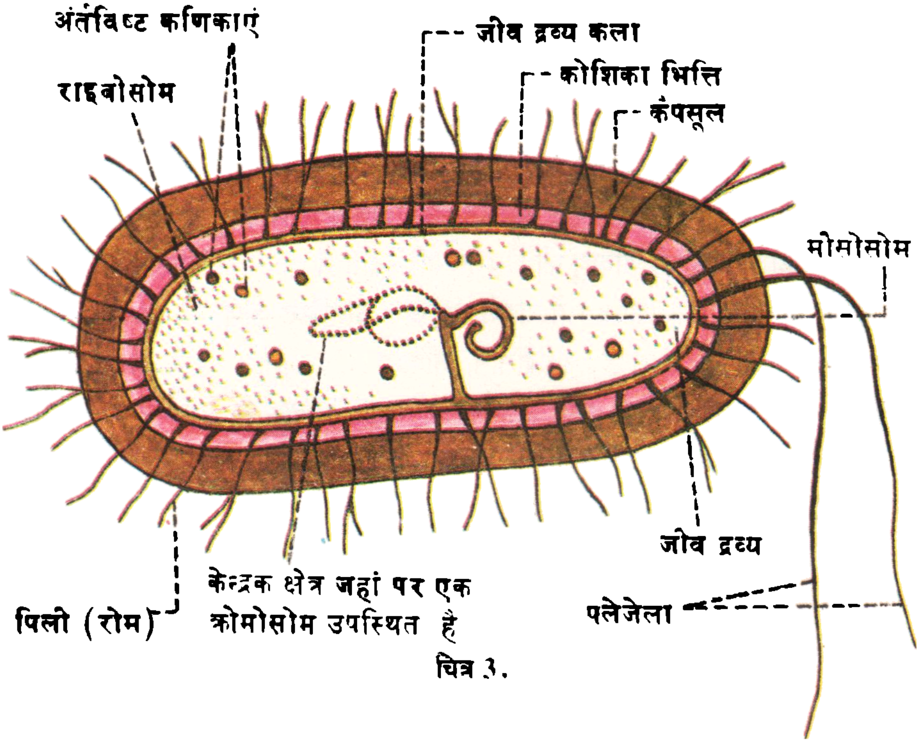
जीवाणुओं के रूप	रूप विन्यास	जीवाणुओं के नाम	जीवाणुओं से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के रोग
 गोलाकार		डिप्लोकोक्कस न्यूमोनी (जीवाणु गोलाकार और दो के समूहों में चारों तरफ कैप्सूल)	निमोनिया और मेनिन्जाइटिस
		स्ट्रप्टो कोक्कस पायोजिनीज़ (जीवाणु गोलाकार और शृंखला में)	र्यूमेटिक फीवर (स्कारलेट फीवर)
		स्टेफाइलोकोक्कस आरियस (जीवाणु गोलाकार और गुच्छों में)	भोजन विषाक्तता आस्टीयोमाइलाइटिस
		निसीरिया गोनोरी (जीवाणु गोलाकार दो के समूह में)	गोनोरिया (जनन अंगों का रोग)
 दंडाकार		इस्करीचिया कोलाई (दंडाकार, छोटे बड़े आकार में)	गेस्ट्रोइन्टेराइटिस (अतिसार)
		साल्मोनिल्ला टायफोसा (दंडाकार, छोटे बड़े आकार में)	टाइफाइड फीवर
		माइकोबैक्टीरियम टुबरकुलोसिस (दंडाकार, पतले गड्ढों में एकत्रित)	टुबरकुलोसिस
		कोरीनीबैक्टीरियम डिप्थीरिये (दंडाकार, उनके शरीर पर छोटे दाने)	डिप्फ्थीरिया
 कॉमा और सर्पिल आकार		विबिरिओ कालरा (दंडाकार परन्तु कॉमा आकार)	कॉलरा (हैजा)
		कैम्फाइलोबैक्टर जेजुनी (सर्पिल आकार)	गेस्ट्रोइन्टेराइटिस (अतिसार)
		ट्रिपोनीमा पैलिडम (सर्पिल आकार)	सिफलिस (जनन अंगों का रोग)

चित्र 2.

हाल ही में सर्पिल आकार के जीवाणु **कैम्फाइलोबैक्टर जेजुनी** की महत्ता सामने आयी है। यह जीवाणु सर्पिल आकार का होता है तथा मनुष्यों में अतिसार यानी गैस्ट्रोइंटेराइटिस उत्पन्न करने में सक्षम है। मनुष्यों में प्रजनन अंगों की बीमारियों में "सिफलिस" रोग काफी भयानक माना जाता है। इसको उत्पन्न करने वाला जीवाणु भी सर्पिल आकार का होता है। वैसे तो मनुष्यों में और भी रोग जीवाणुओं से होते हैं जैसे टी० बी० का रोग, **माइकोबैक्टीरियम टुबरकुलोसिस** के द्वारा होता है, तथा कोढ़ का रोग **माइकोबैक्टीरियम लेप्री** से होता है, जो **माइकोबैक्टीरिया टुबरकुलोसिस** की तरह ही होता है। ऐंथ्रेक्स का रोग **बैसिलस एंथ्रेसिस** से होता है। इसी प्रकार "टिटेनस" का रोग **क्लास्ट्रिडियम टेटेनाई** से होता है। ये चारों ही दंडाकार जीवाणु हैं परन्तु आपस में कई अन्य गुणों की भिन्नता से इनकी जातियां अलग हो जाती हैं।

जीवाणुओं की आन्तरिक रचना : एक जीवाणु की आंतरिक रचना क्या होती है यह जानने के लिए वैज्ञानिकों ने जीवाणु की आंतरिक रचना का सूक्ष्म विच्छेदन किया और उसकी अनिदैर्ध्य काटें (Longitudinal Sections) तैयार करके इलैक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा उसकी आंतरिक रचना का अध्ययन किया। चित्र 3 में एक दंडाकार जीवाणु की अनुदैर्ध्य काट का चित्र दिखाया गया है जिसमें उसकी आंतरिक रचना की झलक दिखाई पड़ रही है। जीवाणु का कोशिका- द्रव (Cell Cytoplasm) एक मजबूत कोशिका भित्ति (Cell Wall) से घिरा रहता है। कोशिका भित्ति ही जीवाणु को रूप प्रदान करती है तथा इसकी रचना ही जीवाणुओं के "ग्राम- अभिरंजन" (Gram Straining) गुण के लिए उत्तरदायी है। बहुत से जीवाणुओं में इस कोशिका भित्ति के ऊपर एक और रचना होती है जिसे "कैपसूल" कहते हैं। यह जीवाणु को मानव शरीर के अंदर श्वेत रक्त कणों के भक्षण की प्रक्रिया (Phagocytic Process) से बचाती है। कोशिका भित्ति पर जीवाणुओं को गतिशीलता प्रदान करने की एक रचना और भी होती है जिसे "फ्लेजेला" (कशाभिका)

कहते हैं। ये प्रोटीन के बने होते हैं इनकी संख्या जीवाणु को कम या अधिक गतिशीलता प्रदान करने के लिए कम या अधिक हो सकती है। **इस्कीरिचिया कोलाई** नामक जीवाणु की कोशिका भित्ति पर चारों तरफ फ्लेजेला होते हैं जिससे यह जीवाणु तरल माध्यम में बहुत ज्यादा गतिशील होता है। फ्लेजेला के अतिरिक्त जीवाणु की कोशिका भित्ति पर एक और रचना पाई जाती है जिसे "पिली (Pili)" रोम कहते हैं। ये रोम, फ्लेजेला से छोटे होते हैं और कोशिका भित्ति पर बहुत अधिक संख्या में होते हैं। ये भी प्रोटीन के बने होते हैं। ये जीवाणुओं के आसंजन (Adhesion) और प्रजनन में सहायक होते हैं। कोशिका भित्ति के अंदर की तरफ और जीव-द्रव के बाहर एक झिल्ली होती है जिसे जीव-द्रव



चित्र 3.

कला (Plasma Membrane) कहते हैं। यह जीवाणु के अंदर भोज्य- पदार्थ के प्रसरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यही झिल्ली जीव-द्रव के अंदर घुसकर वलय (Folds) बनाती है जिन्हें मीसोसोम (Mesosome) कहते हैं।

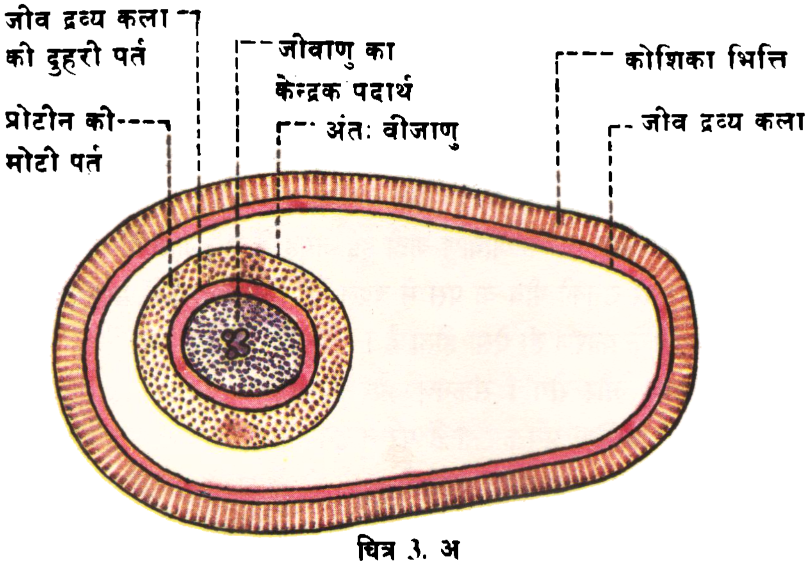
"मीसोसोम" जीवाणु- कोशिका के विभाजन के समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीव-द्रव के अंदर अन्य कोशिका की तरह जीवाणुओं में केन्द्रक नहीं होता बल्कि उसकी जगह "केन्द्रक- पदार्थ" एक छोटे से क्षेत्र में फैला रहता है जिसमें जीवाणुओं में उपस्थित एक पतला, गोल "क्रोमोसोम" जो कि डी० एन० ए० (डी आक्सी राइबोन्यूक्लीक अम्ल) का बना होता है, उपस्थित रहता है। इसी को जीवाणु का गुणसूत्र (Chromosome) कहते हैं। इसमें जीवाणु के प्रजनन सम्बन्धी गुण एवं अन्य गुण मौजूद रहते हैं। जीवाणु गुणसूत्र के अतिरिक्त जीवाणु के कोशिका द्रव में कुछ अन्य गोले छोटे गुणसूत्र, जो कि डी० एन० ए० के बने होते हैं, उपस्थित होते हैं जिन्हें "प्लाजमिड" (Plasmids) कहते हैं। यह जीवाणु- गुणसूत्र से भिन्न होते हैं और उसके कार्य कलाप में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं। ये "प्लाजमिड" कुछ विपरीत परिस्थितियों में जीवाणु के "कोशिक द्रव" में उपस्थित हो जाते हैं। ये जीवाणु को विपरीत परिस्थिति से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त कोशिका द्रव में राइबोसोम और अंतर्विष्ट कणिकाएं (Inclusion Particles) उपस्थित रहते हैं। राइबोसोम, जीवद्रव (Cytoplasm) के अंदर प्रोटीन संश्लेषण में सहायक होते हैं तथा अंतर्विष्ट कणिकाएं जीवाणु के लिए भोजन पदार्थ संग्रहित करने में सहायक होती हैं।

जीवाणुओं में बीजाणु (Spore) बनना

ऐसा देखा गया है कि प्रतिकूल वातावरण में जीवाणु अपनी जीवनरक्षा के लिए अपने अंदर "बीजाणु" बना लेते हैं जिन्हें इंडोस्पर (अंतः बीजाणु) कहते हैं। जब जीवाणु के अंदर कुछ आवश्यक पदार्थों की कमी होने लगती है तभी जीवाणुओं में अंतः बीजाणु

बनते हैं। यह गुण कुछ विशेष जाति के जीवाणुओं जैसे "क्लास्ट्रियम" और "बैसिलस" में ही देखा गया है। ये अंतः बीजाणु जीवाणु की वह अवस्था है जिसके कारण जीवाणु पानी एवं खाद्य पदार्थों की विपरीत अवस्था में भी वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। "बैसिलस" जीवाणु का "अंतः बीजाणु" तो 100 वर्ष तक जीवित पाया गया है।

"स्पोर" बनते समय जीवाणु का केन्द्रक पदार्थ तथा कुछ अन्य छोटे अणु जीवद्रव कला की दो पर्तों तथा उस पर मोटी प्रोटीन की सतह से घिर जाते हैं और अंतः बीजाणु बनाते हैं (चित्र 3 अ) अनुकूल परिस्थिति पाते ही ये अंतः बीजाणु वृद्धि करके फिर जीवाणु- कोशिका बना देते हैं। जीवाणु के अंतः बीजाणु अपनी विशेष संरचना के कारण उबालने पर भी नष्ट नहीं होते तथा इनके ऊपर सामान्य जीवाणु हनन क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन्हीं अवरोधी अंतः बीजाणु के कारण जीवाणु को रोग फैलाने में भी बहुत सहायता मिलती है।



चित्र 3. अ

अध्याय 3

जीवाणु-जनित रोग क्यों और कैसे ?

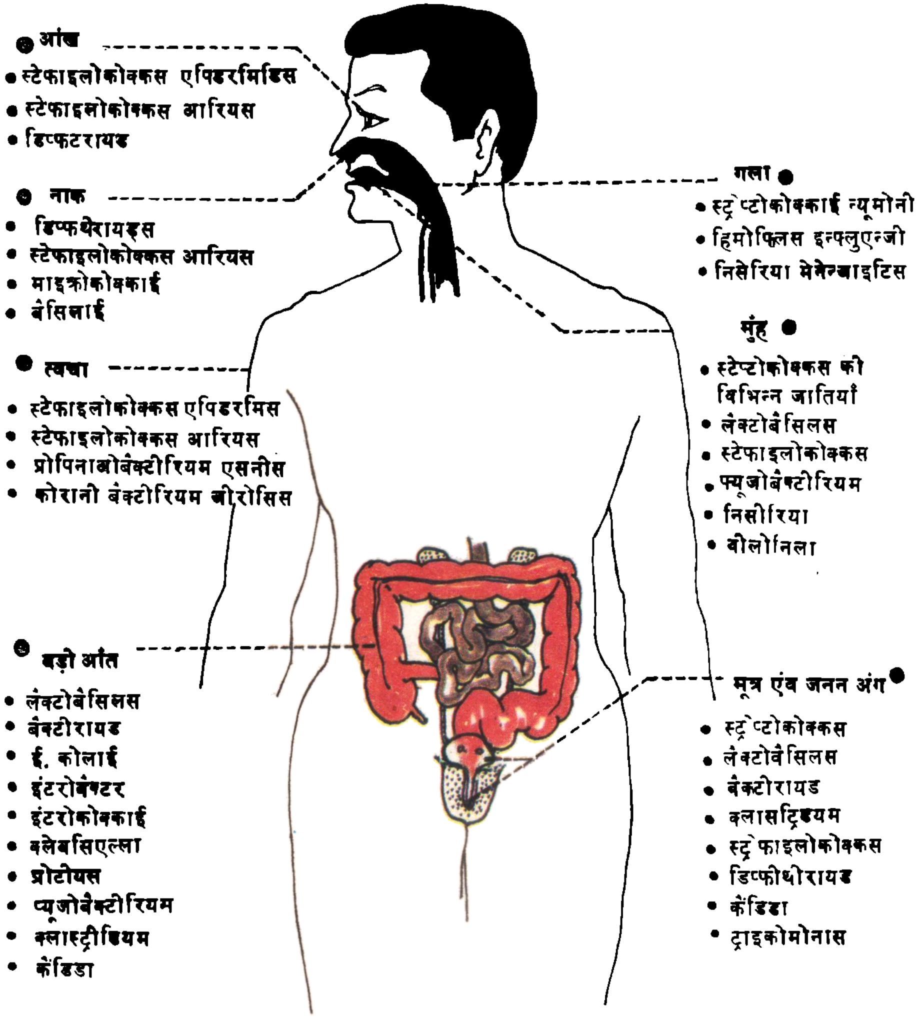
जीवाणुओं का रूप क्या है ? यह हम पिछले अध्याय में जान चुके हैं। इस अध्याय में हम यह बताने का प्रयास करेंगे कि किन-किन परिस्थितियों में जीवाणु शरीर में रोग उत्पन्न करने में समर्थ हैं। हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली एवं जीवाणुओं की रोगजनक क्षमता में एक प्रकार का संतुलन बना रहता है। जैसे ही यह संतुलन बिगड़ता है जीवाणु हम पर भारी पड़ जाते हैं और हम रोग से पीड़ित हो जाते हैं। जरा सा हमारा शरीर कहीं कट जाये और उसका हम उपचार न करें तो दूसरे ही दिन उसमें दर्द होने लगता है तथा उसमें पीब पड़ती दिखाई देती है। आखिर ऐसा क्यों होता है ? हमारे शरीर की त्वचा पर रहने वाले **स्टेफालोकोक्कई** नामक जीवाणु कटी हुई जगह में घुस जाते हैं और श्वेत रक्त कणिकाओं को मारकर उनको पीब या पस में बदल देते हैं। जीवाणुओं द्वारा रोग उत्पन्न करने की इस क्षमता के कारण ही ऐसा होता है।

रोगजनकता संक्रमण और रोग : संक्रमण और रोग (Infection and Disease) आपस में एक दूसरे के लिए प्रयुक्त होते हैं परन्तु इनके अर्थ में अन्तर है। संक्रमण से तात्पर्य है कि रोग- जनक जीवाणु का परपोषी (Host) के शरीर में प्रवेश पा लेना तथा

वहाँ पर बस जाना। परन्तु रोग उत्पन्न होना तभी कहा जा सकता है जबकि जीवाणु शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली पर विजय प्राप्त करके रोग के लक्षण उत्पन्न कर दे। अतः संक्रमण केवल जीवाणु की उपस्थिति बताता है न कि रोग का होना।

स्वस्थ शरीर में सामान्य रूप से उपस्थित रहने वाले जीवाणु : जब शिशु मां के पेट में रहता है तब उसमें कोई जीवाणु नहीं होता परन्तु पैदा होने के साथ ही उसके शरीर में जीवाणुओं का प्रवेश प्रारम्भ हो जाता है। जन्म के समय नवजात शिशु मां की योनि से "लैक्टोबेसिलस" जीवाणु को ग्रहण करता है और उसकी अंतड़ियों में ये जीवाणु जन्म के बाद बहुत अधिक संख्या में पाये जाते हैं। उसके उपरांत भोज्य पदार्थों से जैसे दूध और दूध उत्पाद तथा मानव संसर्ग से विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं की संख्या शिशु में बढ़ती जाती है। इस प्रकार शिशु के शरीर की बाह्य त्वचा तथा आंतरिक अंगों में जीवाणु की उपस्थिति हो जाती है। इसमें से तो कुछ स्वस्थ शरीर में सामान्य रूप से बने रहते हैं और कुछ, कुछ समय के लिए संख्या में बढ़ जाते हैं और फिर घटकर धीरे- धीरे बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं। शरीर में सामान्य रूप से रहने वाले जीवाणु हर अंग में नहीं रहते, बल्कि शरीर के कुछ विशिष्ट स्थानों एवं अंगों पर बसेरा डाले रहते हैं (जैसा कि चित्र 4 में दर्शाया गया है)। मानव- स्वस्थ शरीर में सामान्य रूप से रहने वाले जीवाणुओं का मानव से संबंध सह- अस्तित्व का है – जीवित रहो और जीवित रहने दो। इसी को सहजीवन (Symbiosis) कहते हैं। इसी सहजीवन का एक प्रकार "सहभोजिता" (Commensalism) है।

इसमें बसे हुए जीवाणु परपोषी से उत्सर्जित पदार्थों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं और परपोषी को न कोई लाभ पहुंचाते हैं न ही कोई हानि। जैसे **कोरीनोबैक्टीरियम** नामक जीवाणु आंखों में रहते हैं। आंखों से उत्सर्जित होने वाला मल पदार्थ उनका भोजन है। परन्तु ये वहां रहकर आंख को कोई हानि नहीं पहुंचाते। इसी सहजीवन का एक रूप


आंख
स्टेफाइलोकोक्कस एपिडरमिडिस
स्टेफाइलोकोक्कस आरियस
डिप्फटरायड
नाक
डिप्फथेरायड्स
स्टेफाइलोकोक्कस आरियस
माइक्रोकोक्काई
बेसिलाई
त्वचा
स्टेफाइलोकोक्कस एपिडरमिस
स्टेफाइलोकोक्कस आरियस
प्रोपिनाबोबेक्टीरियम एसनीस
कोरानी बेक्टीरियम बीरोसिस
बड़ी आंत
लेक्टोबेसिलस
बेक्टीरायड
ई. कोलाई
इंटरोबेक्टर
इंटरोकोक्काई
क्लेबसिएल्ला
प्रोटीयस
प्यूजोबेक्टीरियम
क्लास्ट्रीडियम
केंडिडा
गला
स्ट्रेप्टोकोक्काई न्यूमोनी
हिमोफिलस इन्फ्लुएन्जी
निसेरिया मेनेन्जाइटिस
मुंह
स्टेप्टोकोक्कस की विभिन्न जातियां
लेक्टोबेसिलस
स्टेफाइलोकोक्कस
फ्यूजोबेक्टीरियम
निसीरिया
वीलोनिला
मूत्र एंव जनन अंग
स्ट्रेप्टोकोक्कस
लेक्टोबेसिलस
बेक्टीरायड
क्लासट्रिडयम
स्ट्रेफाइलोकोक्कस
डिप्फीथीरायड
केंडिडा
ट्राइकोमोनास

चित्र 4.

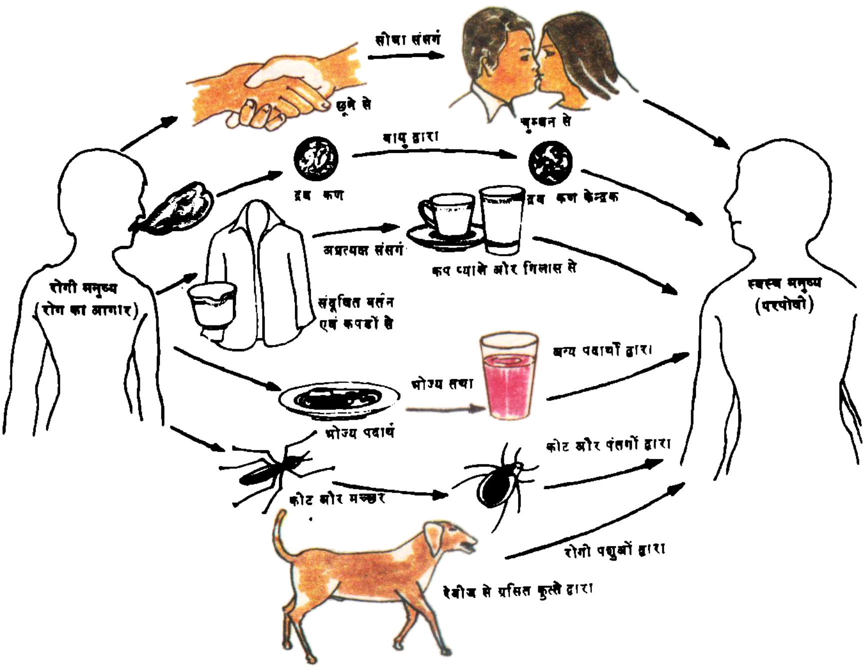
सहोपकारिता (Mutualism) भी है जो बड़ी आंत में रहने वाले जीवाणुओं में पाई जाती है। बड़ी आंत में रहने वाले जीवाणु **ई० कोलाई** विटामिन "के" और विटामिन "बी" का संश्लेषण करते हैं। ये विटामिन रक्त द्वारा अवशोषित होकर शरीर के अन्य भाग में कोशिकाओं के उपयोग के लिए चले जाते हैं। इसके बदले में, बड़ी आंत में उपस्थित भोजन के अवशेषों पर ये ज़ीवाणु अपना जीवन गुजारते हैं तथा भोजन पाचन में सहायता भी करते हैं। परन्तु किन्हीं बदली हुई परिस्थितियों में ये नुक्सान न पहुंचाने वाले जीवाणु भी रोगजनक बन जाते हैं। बड़ी आंत में रहने वाले **ई० कोलाई** एक अवसरवादी (Opportunist) जीवाणु हैं। जब तक यह बड़ी आंत में है सामान्य रहता है परन्तु यदि शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में कोई कमी आ जाये और यह छोटी आंत में पहुंच जाए तो, अतिसार और **इन्टेराइटिस** उत्पन्न कर देता है। यही नहीं, यदि ये जीवाणु बड़ी आंत की श्लेष्मिक झिल्ली पार कर लें तो अन्य अंगों जैसे मूत्रथैली, फेफड़े, गुर्दे, सुषुम्ना आदि में पहुंच कर तरह-तरह के रोग भी उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार त्वचा पर रहने वाला **स्टेफाइलोकोकाई** किसी प्रकार का नुक्सान नहीं पहुंचाता परन्तु यदि त्वचा कहीं कट जाये अथवा चोट लगने से कोई घाव बन जाये, तो यही **स्टेफाइलोकोकाई** चोट तथा कटे हुए स्थान पर घुसकर पीब बनाने लगते हैं।

रोग का फैलाव : सामान्य रूप से रहने वाले जीवाणुओं के अतिरिक्त यदि बाहर से अधिक संख्या में रोगजनित जीवाणु शरीर में प्रवेश पा जायें तो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली का संतुलन बिगड़ जाता है तथा शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है। रोग जनक जीवाणुओं के शरीर में पहुंचने के कई रास्ते और माध्यम हैं।

(1) **संसर्ग द्वारा :** यह भी दो प्रकार का होता है (अ) सीधा (Direct) या प्रत्यक्ष संसर्ग तथा (ब) अप्रत्यक्ष (Indirect) संसर्ग। सीधे संसर्ग में रोगजनक जीवाणु का परपोषी से सीधा सम्पर्क होता है जैसे कि किसी रोगी का स्वस्थ मनुष्य को छूना या

हाथ मिलाना, रोगी का चुम्बन लेना, रोगी पुरुष या स्त्री का स्वस्थ स्त्री या पुरुष से संभोग करना। इस तरह से फैलने वाले रोगों के नाम हैं – सिफलिस, गोनौरिया, एड्स, रेबीज, मीज़ल, स्कार्लेट फीवर आदि।

अप्रत्यक्ष रूप से संसर्ग किसी अजीवित पदार्थ जो कि संदूषित हो, के माध्यम से होता है, जैसे संदूषित रूमाल, तौलिया, बिस्तर, बर्तन, प्याले आदि। ऐसे संदूषित पदार्थ रोगजनक जीवाणुओं को परपोषी तक पहुंचाते हैं। संदूषित तौलियों के प्रयोग से **स्टेफाइलोकोकस** का फैलाव अक्सर देखा गया है (चित्र 5)।



चित्र 5.

(2) **वायु द्वारा :** जब हम बोलते, खांसते या छींकते हैं तो हमारे मुंह व नाक से छोटे छोटे द्रव कण (Droplets) वायु में बिखर जाते हैं और एक मीटर तक हवा में तैरते हुए चले जाते हैं और परपोषी को संक्रमित कर देते हैं। कभी-कभी यह द्रव कण सूखकर द्रव- कण- केन्द्रक (Droplet Nuclei) बन जाते हैं जो कि काफी समय तक हवा में बने रहते हैं तथा स्वस्थ परपोषी में संदूषण उत्पन्न करते रहते हैं। रोगी मनुष्य के नाक व मुंह से निकले संदूषित- द्रव कण रोग को स्वस्थ परपोषी तक पहुंचाने की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (चित्र 5)। इस विधि से फैलने वाले कुछ रोगों के नाम हैं – टुबरकुलोसिस, क्यू फीवर, माता (चेचक) का रोग, फफूंद से होने वाले रोग आदि।

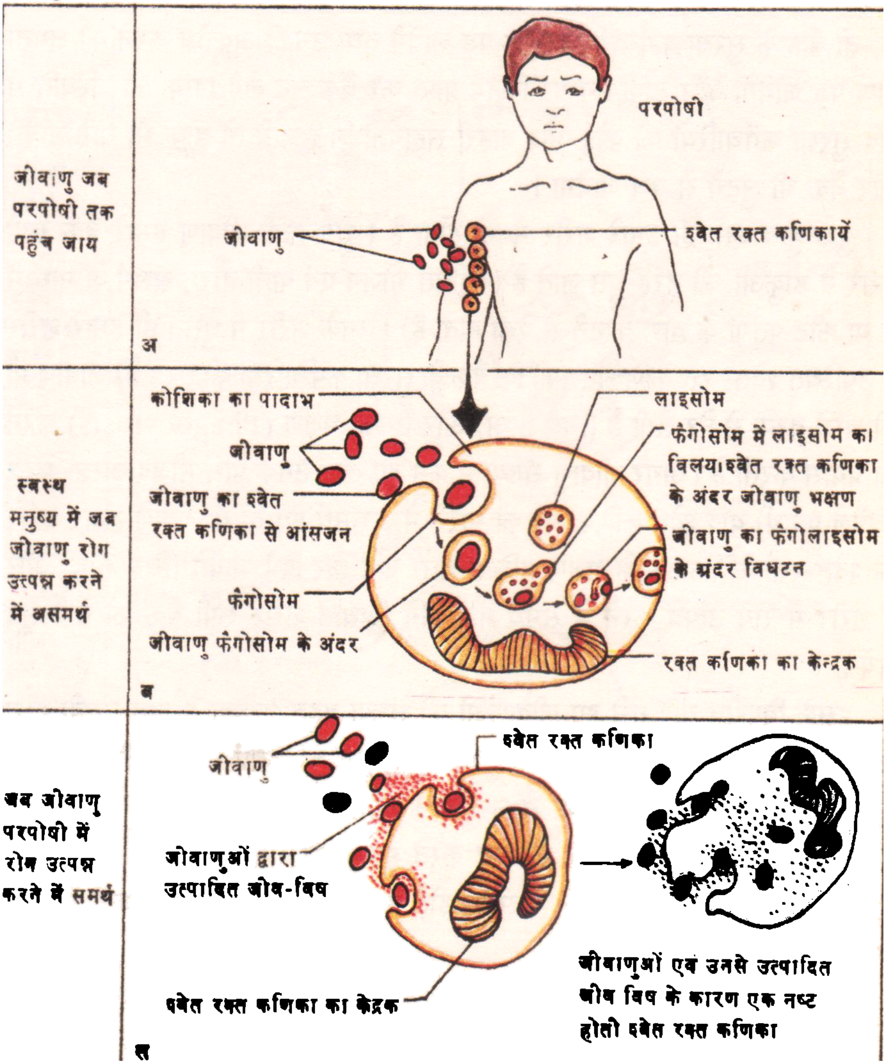
(3) **भोज्य तथा अन्य पदार्थों द्वारा :** इस विधि में अजीवित भोज्य पदार्थ या अन्य पदार्थ रोगाणु को स्वस्थ परपोषी तक पहुंचाने में सहायता करते हैं। इसके अंतर्गत आते हैं – संदूषित भोज्य पदार्थ, पानी, दूध, फल आदि। इस विधि से फैलने वाले कुछ रोग हैं – कॉलरा, हिपेटाइटिस, टायफाइड, भोजन विषाक्तता आदि। अन्य पदार्थों के उदाहरण हैं रक्ताधान (Blood Transfusion)। एड्स नामक रोग तो मुख्यतः बीमार मनुष्य के रक्त को स्वस्थ मनुष्य में आधान करने से होता है।

(4) **कीट पतंगों द्वारा :** छोटे-छोटे कीट जैसे मच्छर, मक्खी, पिस्सू, किलनी, जूँ आदि रोग- वहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये रोग- वहन में दो प्रकार से मदद करते हैं। पहली विधि में इनकी भूमिका यांत्रिक होती है। जैसे मक्खी, रोगी मनुष्य के मलमूत्र और अन्य संदूषित उत्सर्जी पदार्थ पर बैठकर अपने पैरों को रोगाणुओं से संदूषित कर लेती है। फिर यही मक्खी जब स्वच्छ भोज्य पदार्थों पर बैठती है तो अपने पैरों में लगे रोगाणुओं को भोजन पर पहुंचा कर भोजन को संदूषित कर देती है। इस विधि से मुख्यतः दो रोग फैलते हैं – एक तो "टायफाइड" दूसरा

"शिगीलोसिस" जिसमें खूनी आंव पड़ने लगता है। दूसरी रोग- वहन विधि में रोगाणु कीट के अंगों में वृद्धि करते हैं। जब ये कीट किसी स्वस्थ मनुष्य को खून पीने के लिए काटते हैं तो ये रोगाणुओं को स्वस्थ मनुष्य के शरीर में पहुंचा देते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण है मलेरिया। इसी विधि से फाइलेरिया का रोग भी मनुष्यों को लगता है।

(5) **रोगी जानवरों द्वारा :** कुत्ते, बिल्ली तथा अन्य पालतू पशु भी तरह तरह के बिमारियों से पीड़ित होते रहते हैं। इनके रोगाणु भी संसर्ग या काटने से मनुष्यों को लग सकते हैं। इसका उदाहरण है रेबीज, जो कि कुत्ते की एक भयानक बीमारी है। इसमें कुत्ता पागल हो जाता है और ऐसा पागल कुत्ता यदि मनुष्य को काट ले तो मनुष्य भी पागल हो जाता है। एक बार यदि किसी मनुष्य में रेबीज के लक्षण दिखाई दें तो फिर उसकी मृत्यु निश्चित है। इसके लिए यह जरूरी है कि कुत्ते के काटने के तुरन्त बाद 14 इंजेक्शन लगवा लेना चाहिए। इसी से मनुष्य के जीवन की रक्षा हो सकती है।

शरीर में जीवाणुओं द्वारा रोग कैसे उत्पन्न होता है ? इसको समझने के लिए संक्षेप में पहले जीवाणु की रोग उत्पन्न करने की क्षमता (Pathogenieity) तथा जीवाणु द्वारा उत्सर्जित कुछ विषैले पदार्थों एवं परपोषी की रोगरोधक क्षमता के विषय में कुछ समझ लें। इन सबके विषय में लिखने से पहले एक उदाहरण दिया जा सकता है जिससे उपर्युक्त विषय को समझने में आसानी होगी। अगर डाकू पिस्तौल और मशीनगन लेकर किसी बैंक में डाका डालने घुसें तो बैंक के सुरक्षा कर्मचारी क्या करेंगे ? अगर डाकू कम हैं और सुरक्षाकर्मचारी के पास अच्छे हथियार हैं तो वे डटकर मुकाबला करेंगे। सुरक्षा कर्मचारी या तो उन्हें मार देंगे या फिर डाकू थोड़ा ही नुक्सान करके भाग निकलेंगे। इसके विपरीत यदि डाकू ज्यादा हों और अधिक अच्छे शस्त्रों जैसे पिस्तौलों और स्टेनगनों से सुसज्जित


परपोषी
जीवाणु जब परपोषी तक पहुंच जाय
जीवाणु
श्वेत रक्त कणिकायें
अ
कोशिका का पादाभ
लाइसोम
जीवाणु
फैगोसोम में लाइसोम का विलय। श्वेत रक्त कणिका के अंदर जीवाणु भक्षण
स्वस्थ मनुष्य में जब जीवाणु रोग उत्पन्न करने में असमर्थ
जीवाणु का श्वेत रक्त कणिका से आंसजन
जीवाणु का फैगोलाइसोम के अंदर विघटन
फैगोसोम
जीवाणु फैगोसोम के अंदर
रक्त कणिका का केन्द्रक
ब
श्वेत रक्त कणिका
जीवाणु
जब जीवाणु परपोषी में रोग उत्पन्न करने में समर्थ
जीवाणुओं द्वारा उत्पादित जीव-विष
श्वेत रक्त कणिका का केंद्रक
जीवाणुओं एवं उनसे उत्पादित जीव विष के कारण एक नष्ट होती श्वेत रक्त कणिका
स

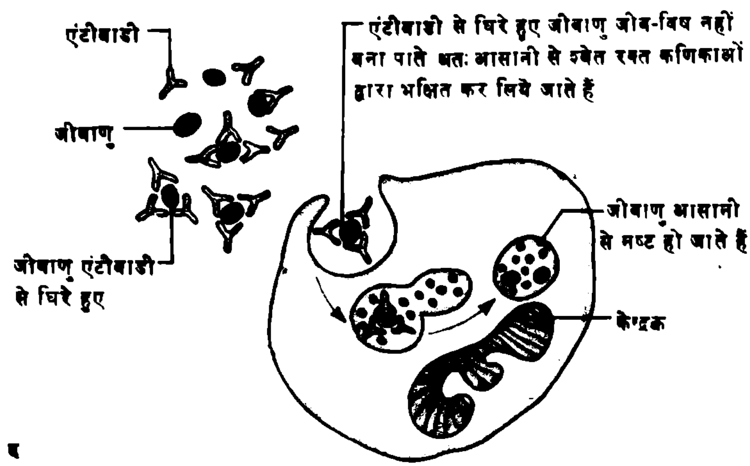
हों, तो बैंक के सुरक्षा कर्मचारी कमज़ोर पड़ जायेंगे तथा उनकी अवरोध करने की क्षमता क्षीण पड़ जायेगी और डाकू उन पर विजय प्राप्त कर बैंक लूट लेंगे। एक और स्थिति में यदि सुरक्षा कर्मचारियों को कोई और बाहरी सहायता मिल जाये तो डाकू भी मारे जायेंगे और बैंक भी लुटने से बच जायेगा।

कुछ-कुछ ऐसा ही हमारे शरीर में भी होता है। रोगजनक जीवाणु हमारे बैंक रूपी शरीर में डाकुओं की तरह घुस जाते हैं (संदूषित भोजन एवं पानी द्वारा, संसर्ग के माध्यम से या कीट पतंगों के द्वारा काटने से ऐसा होता है)। उनके शरीर में घुसते ही हमारे शरीर में उपस्थित श्वेत- रक्त कणिकाएं (जो कि बैंक के सुरक्षा कर्मचारियों की तरह हैं) जीवाणुओं को चारों तरफ से घेर लेती हैं (चित्र 6 अ) और उनका भक्षण (Phagocytosis) करने का प्रयास करती हैं। अगर जीवाणु संख्या में कम हुए तथा उनके पास मौजूद अस्त्र- शस्त्र (विषैले पदार्थ) यदि श्वेत कणिकाओं को मारने में असमर्थ हुए तो ये जीवाणु हमारे शरीर की श्वेत-रक्त कणिकाओं के भक्षण प्रक्रिया द्वारा नष्ट कर दिये जायेंगे (चित्र 6 ब) और वे शरीर में रोग उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होंगे (अर्थात् शरीर रूपी बैंक को नहीं लूट पायेंगे)।

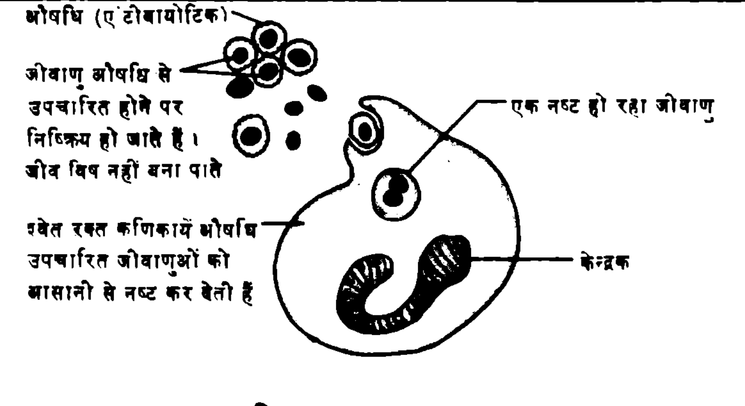
इसके विपरीत यदि घुसे हुए जीवाणुओं की संख्या बहुत अधिक है तथा उसके द्वारा उत्पादित विषैले पदार्थ अधिक मात्रा में हुए तो श्वेत-रक्त कणिकाएं जो कि जीवाणुओं को घेर कर युद्ध करती हैं बहुत तेजी से नष्ट होने लगती हैं (चित्र 6 स) और इस प्रकार हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को नष्ट करते हुए जीवाणु विभिन्न अंगों में पहुंच जाते हैं और शरीर में रोग उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं (अर्थात् वे हमारे शरीर रूपी बैंक को नष्ट करने में सक्षम हो जाते हैं)।

एक तीसरी स्थिति यह भी हो सकती है कि यदि परपोषी में उस जीवाणु के प्रति टीका लगा हो तो ऐसे परपोषी में प्रतिरक्षी (Antibody) बहुत अधिक मात्रा में बन जाते हैं।

जब परपोषी
ीके से सुरक्षित
हो तो जीवाणु
एंटीबाडी द्वारा
निष्क्रिय बना
दिया जाता है
और उनका
भक्षण आसानी
से होता है



जब रोगी परपोषी को औषधि देते हैं रोगी को जीवाणुओं से रक्षा होती है क्योंकि औषधि जीवाणुओं के निष्क्रिय बना देते हैं।



य चित्र 6. द, य

ये प्रतिरक्षी घुसने वाले जीवाणुओं के चारों तरफ चिपक जाते हैं और उसके द्वारा उत्पादि विषैले पदार्थों को निष्क्रिय बना देते हैं। ऐसे प्रतिरक्षियों से घिरे जीवाणुओं को श्वेत र कणिकाएं आसानी से भक्षण करके नष्ट कर देती हैं (चित्र 6 द) यदि रोगी को परपोष

में ऐन्टिबायोटक दे दें तो यह एक बाहरी सहायता है, जो कि बाहरी पुलिस फोर्स की तरह है जो जीवाणु को नष्ट तथा निष्क्रिय करने में समर्थ है। ऐसे मरते हुए निष्क्रिय जीवाणुओं को श्वेत-रक्त कणिकाएं आसानी से नष्ट कर देती हैं (चित्र 6 य)।

जीवाणुओं द्वारा उत्पादित कुछ विषैले पदार्थ : जीवाणु तरह-तरह के विषैले पदार्थ उत्पन्न करके शरीर में रोग उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। ऐसे ही कुछ जीवाणुओं के विषैले पदार्थों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है –

(1) **टाक्सिन (विषैले पदार्थ) :** ऐसा पाया गया है कि जब कुछ जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है तो वे विषैले पदार्थ बनाते हैं जो कि शरीर के प्रतिरक्षा प्रणाली को हानि पहुंचाते हैं। ये पदार्थ दो प्रकार के होते हैं (अ) **एक्सोटाक्सिन** जैसे **क्लास्ट्रिडियम टेटेनाई** नामक जीवाणु, घाव में वृद्धि करते हैं तो **टेटेनस टाक्सिन** बनाते हैं। रोगी बच्चे या मनुष्य की सारी देह इस विषैले पदार्थ के कारण अकड़ जाती है। **कोरीनीबैक्टीरियम डिफ्थीरिया** नामक जीवाणु रोगी मनुष्य या बच्चे के शरीर में एक विषैला पदार्थ बनाते हैं जिससे कि बच्चे का पूरा गला फंस जाता है और बच्चे की सांस घुटने लगती है। इसी प्रकार **स्टेफाइलोकोकस आरीयस** नामक जीवाणु संदूषित भोजन में **एन्टरोटाक्सिन** नामक जीवविष बनाते हैं जो कि उबालने पर भी नष्ट नहीं होता और जब यह पेट में पहुंचता है तो रोगी को उल्टी और दस्त शुरू हो जाते हैं। एन्टरोटाक्सिन नामक जीवविष कुछ अन्य जीवाणु जैसे **विबिरिओ कॉलरा :ई० कोलाई:, क्लास्ट्रिडियम परफ्रीजेंस** आदि बनाते हैं।

(2) **इन्डोटाक्सिन :** कुछ जीवाणु जैसे **ई० कोलाई, साल्मोनिला** आदि मरणोपरांत दूध तथा अन्य भोज्य पदार्थों में इंडोटाक्सिन निकालते हैं। ये पदार्थ वसीय घटकों के बने होते हैं तथा **परपोषी- रोगी** के शरीर में बुखार उत्पन्न करते हैं।

(3) **हायलूरिनिडेज :** कुछ गोलाकार और दंडाकार जीवाणु हायलूरिनिडेज नामक विषैला

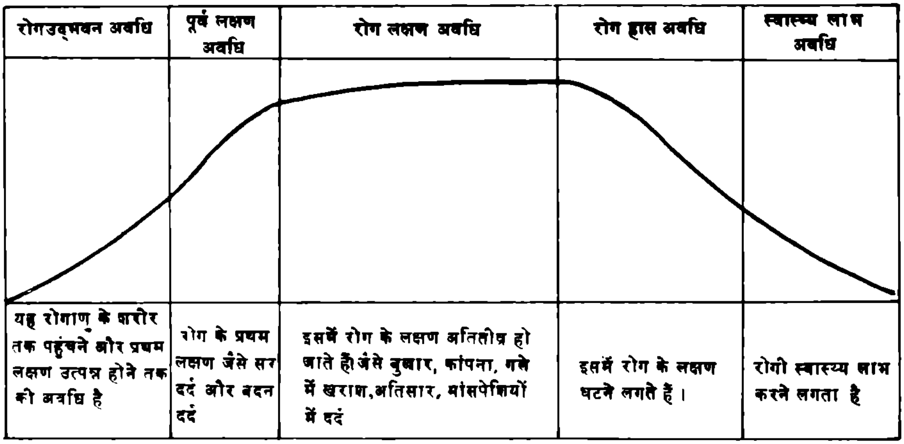
पदार्थ बनाते हैं जिससे कि ऊत्तक कोशिकाएं एक दूसरे से अलग हो जाती हैं और जीवाणु उत्तकों के बीच घुसते चले जाते हैं।

(4) **लेसिथिनेज :** यह पदार्थ **क्लास्ट्रिडियम परफ्रीजैंस** और कुछ अन्य जीवाणुओं से उत्पादित होता है जो कि विभिन्न ऊत्तक कोशिकाओं तथा रक्त-कणिकाओं का विघटन या संलयन (Haemolysis) करता है।

(5) **कोएगुलेज :** रोगजनक **स्टेफाइलोकोकाई** कोएगुलेज नामक पदार्थ उत्पन्न करते हैं जो कि फाइब्रिनोजन को फिब्रिन में बदल कर अपने चारों तरफ सुरक्षा की दीवार बनाकर श्वेत-रक्त-कणिकाओं की भक्षण- प्रक्रिया से अपने को बचाने का प्रयास करता है।

(6) **ल्यूकोसाइडिन : स्टेफाइलोकोकाई** और **स्ट्रेप्टोकोकाई** ल्यूकोसाइडिन बनाते हैं जो भक्षण करने वाले श्वेत-रक्त-कणिकाओं को नष्ट करते हैं।

रोग की अवस्थाएं : जब जीवाणु शरीर में रोग उत्पन्न करने में सक्षम हो जाते हैं तो रोग



चित्र 7.

उत्पन्न होने तक उसकी निम्न अवस्थाएं पाई जाती हैं (चित्र 7) ।

(अ) **रोग उद्भवन अवधि (Incubation Period) :** यह रोगाणु के शरीर तक पहुंचने और रोग के प्रथम लक्षण उत्पन्न होने तक की अवधि है । इस अवधि में जीवाणु परपोषी के अंदर अपने लिए अनुकूल वातावरण बनाता है । इस अवधि में जीवाणु शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली पर विजय प्राप्त करके, रोग उत्पन्न करने में सक्षम हो जाते हैं । यह अवधि रोगाणु की रोगजनकता तथा परपोषी की रोग- रोधक क्षमता के अनुसार घटती बढ़ती है । यह भिन्न भिन्न रोगाणुओं में भिन्न भिन्न होती है ।

(ब) **पूर्वलक्षण अवधि (Prodromal Period) :** यह अवधि कम अंतराल की होती है तथा उद्भवन अवधि के तुरन्त बाद की होती है । इसमें रोग के प्रथम लक्षण जैसे सरदर्द, बदन दर्द आदि उत्पन्न होते हैं ।

(स) **रोग लक्षण अवधि (Period of Illness) :** रोग की इस अवस्था में रोग के लक्षण अतितीव्र होते हैं । रोगी में रोग के लक्षण जैसे बुखार, कांपना, मांसपेशियों में दर्द, गले में खराश, अतिसार आदि पूर्णरूप से दिखाई पड़ते हैं ।

(द) **रोग ह्रास की अवधि (Period of Decline) :** इसमें बुखार कम होने लगता है। शरीर का दर्द घटने लगता है । इसकी अवधि, लक्षण घटने के साथ कम ज्यादा हो सकती है ।

(य) **स्वास्थ्य लाभ की अवधि (Period of Convalescence) :** यह रोग की वह अवस्था है जिसमें रोगी स्वास्थ्य लाभ करने लगता है । उसकी आंतरिक शक्ति लौटने लगती है और रोगी रोग से पूर्व की अवस्था में लौटने लगता है ।

रोग के प्रकार : रोग किस प्रकार फैलते हैं तथा उनकी प्रकृति क्या है इस आधार पर रोगों के कई प्रकार बनाये गये हैं जैसे -

(1) **संचरणीय रोग** (Communicable Disease) : वे रोग जो एक परपोषी से दूसरे परपोषी तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संसर्ग से फैलते हैं, जैसे टायफाइड, टी० बी० आदि।

(2) **असंचरणीय रोग** (Non Communicable Disease) : वे रोग जो शरीर में रहने वाले जीवाणुओं द्वारा यदाकदा उत्पन्न हो जाते हैं या ऐसे जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोग जिनके कारक सामान्यतः हमेशा शरीर के बाहर रहते हैं परन्तु यदि शरीर में पहुंच जायें तो रोग उत्पन्न करते हैं, जैसे टिटेनस के जीवाणु अगर घाव के द्वारा शरीर में पहुंच जायें तो टिटेनस रोग उत्पन्न हो जाता है।

(3) **सांसर्गिक रोग** (Contagious Disease): ऐसे रोग जो आसानी से एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को लग जायें जैसे चेचक का रोग।

(4) **महामारी रोग** (Epidemic Disease) : किसी रोग को महामारी रोग तब कहते हैं जब यह थोड़े समय में किसी स्थान पर ज्यादा लोगों को प्रभावित करे, जैसे इन्फ्लुऐंजा, मीज़ल आदि।

(5) **देशान्तरगामी महामारी रोग** (Pandemic Disease) : कोई रोग जब सारे विश्व को अपने चंगुल में ले ले, जैसे 1950 का फ्लू रोग सारे विश्व में फैला था।

(6) **स्थानिक रोग** (Endemic Disease) : ऐसे रोग जो किसी जगह पर लोगों में लगातार बने रहते हैं जैसे जुकाम, मलेरिया आदि।

(7) **छुट- पुट रोग** (Sporadic Disease) : ऐसे रोग जो यदाकदा लोगों को हो जायें जैसे पोलियो का रोग।

(8) **तीव्र रोग** (Acute Disease) : जो रोग तेजी से लग जायें और शरीर में थोड़े समय तक बना रहे, जैसे इन्फ्लुऐंजा।

(9) **चिरकालिक रोग** (Chronic Disease) : ऐसे रोग जो शरीर में धीरे-धीरे उत्पन्न

हों तथा उनके लक्षण तीव्र न हों और वे शरीर में बहुत समय तक बने रहें जैसे टी० बी०, सिफलिस, लेप्रेसी आदि।

(10) **पशुजनित रोग (Zoonoses)** : वे रोग जो पशुओं में से मनुष्य को लग जाते हैं जैसे ब्रुसलोसिस, टी० बी० आदि।

रोग सम्बन्धी कुछ अन्य बातें

1. **शरीर में जीवाणुओं के घुसने के प्रवेश द्वार** : जीवाणु कई रास्तों से शरीर में घुस पाते हैं। इनमें कुछ मुख्य इस प्रकार हैं —

   (क) **श्वसन के द्वारा** : जब हम सांस लेते हैं तो अंदर जाती वायु के साथ संदूषित द्रव-कण, जीवाणु, धूल के कण जिन पर रोगाणु हो सकते हैं, **कवक के बीजाणु** आदि सभी घुस जाते हैं। रोगाणु श्वसन प्रणाली की श्लेष्मिक झिल्लियों (Mucous Membranes) को पार कर रोग उत्पन्न करने में समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से प्रविष्ट जीवाणुओं से कुछ होने वाले रोग हैं - न्यूमोनिया, टी० बी०, इन्फ्लुऐंजा, माता का रोग, मीज़ल आदि।

   (ख) **जठरांत्रप्रणाली (Gaestro-intestinal Tract) द्वारा** : यह प्रणाली शरीर में जीवाणुओं के घुसने का एक मुख्य रास्ता है। संदूषित भोजन, पानी, दूध तथा अन्य भोज्य पदार्थों में उपस्थित रोगाणु जब इस प्रवेश द्वार से घुसते हैं तो जठर रस में उपस्थित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल उनको काफी संख्या में मार देता है। परन्तु इस हनन के बाद जो बच निकलते हैं वे रोग उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। वे जठरांत्र प्रणाली के श्लेष्मिक झिल्ली को पार कर शरीर में प्रवेश पा लेते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं जैसे लकवा का रोग, इनफेक्शियस हेपेटाइटिस, टायफाइड फीवर, कॉलरा, अमीबिक डिसेंट्री, अतिसार, भोजन विषात्तता आदि। इस प्रवेश द्वार से घुसे जीवाणु मल में बहुत ज्यादा संख्या में

बाहर निकलते रहते हैं और इनसे जल, भोज्य पदार्थ एवं हाथ संदूषित होते रहते हैं।

(ग) **प्रजनन अंगों के द्वारा** : प्रजनन अंगों में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु मुख्यतः इसी प्रवेश द्वार से घुसते हैं। प्रजनन रोगों जैसे एड्स, सिफलिस, गोनोरिया, संसर्गी गर्भपात के रोगाणु प्रजनन अंगों की श्लेष्मिक झिल्लियों को पार कर इन अंगों में प्रवेश पा लेते हैं।

(घ) **त्वचा के द्वारा** : वैसे तो रोगाणु त्वचा को पार नहीं कर सकते हैं परन्तु यदि किसी विधि से ये त्वचा के नीचे क्षेपित हो जायें तो वे रोग उत्पन्न करने में सक्षम हो जाते हैं - जैसे मलेरिया में मच्छर त्वचा को छेदकर खून चूसते हैं उसी समय मलेरिया के रोगाणु त्वचा के नीचे क्षेपित हो जाते हैं। त्वचा में संदूषित सुई से इंजेक्शन लगाते समय या कुत्ते, बिल्ली, बन्दर आदि के काटने से या किसी चीज से घाव बन जाने में जब त्वचा कटती है तो जीवाणु इस बने प्रवेश द्वार से घुस कर रोग उतपन्न कर सकते हैं। इस विधि से बने प्रवेश द्वार से घुस कर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इस विधि से बने प्रवेश द्वार को आंत्रेत्तर विधि (Parentral Route) भी कहते हैं। इस विधि से होने वाले रोग हैं - रैबीज, मलेरिया, एंथ्रेक्स आदि।

(2) **जीवाणुओं के शरीर से बाहर निकलने के रास्ते** : रोगाणु एक परपोषी में रोग उत्पन्न करने के बाद अपना जीवन चक्र चलते रहने के लिए रोगी परपोषी के शरीर के विभिन्न रास्तों से निकल कर अन्य स्वस्थ परपोषी तक पहुंचने का प्रयास करते हैं। इन रास्तों में श्वसन के द्वारा रोगाणुओं का बाहर निकलना बहुत अधिक होता है। रोगी मनुष्य के थूक या नाक से निकले उत्सर्जी पदार्थ, फेफड़ों से निकली वायु या खांसते समय मुख से निकले द्रव-कणों में रोगाणुओं की संख्या बहुत अधिक

होती है और इन संदूषित पदार्थों से स्वस्थ मनुष्यों को रोग लग सकते हैं। कुछ रोगों जैसे टी० बी०, हूपिंग कफ (काली खांसी), न्यूमोनिया, मीजल, मम्स, चेचक, इन्फलुऐंजा आदि के रोगाणुओं का फैलाव मुख्यतः श्वसन के द्वारा होता है। रोगाणुओं के बाहर निकलने की दूसरी मुख्य विधि मल द्वारा है। मल में निष्कासित होने वाले कुछ रोगों के जीवाणु हैं कॉलरा, टायफाइड, पैराटायफाइड, अतिसार, अमीबिक डिसेंट्री और लकवा आदि के कारक। तीसरी विधि जो रोगाणु शरीर से बाहर निकलने के लिए प्रयुक्त करते हैं वह है मूत्र तथा जनन अंगों से निकलने वाले उत्सर्जी पदार्थ। इस श्रेणी के रोग हैं - एड्स, टायफाइड-फीवर, ब्रुसलोसिस, सिफलिस, गोनौरिया आदि। त्वचा में हुए घाव से निकलने वाले पीव से स्टेफाइलोकोक्काई जैसे रोगाणुओं का फैलाव बहुत तेजी से होता है।

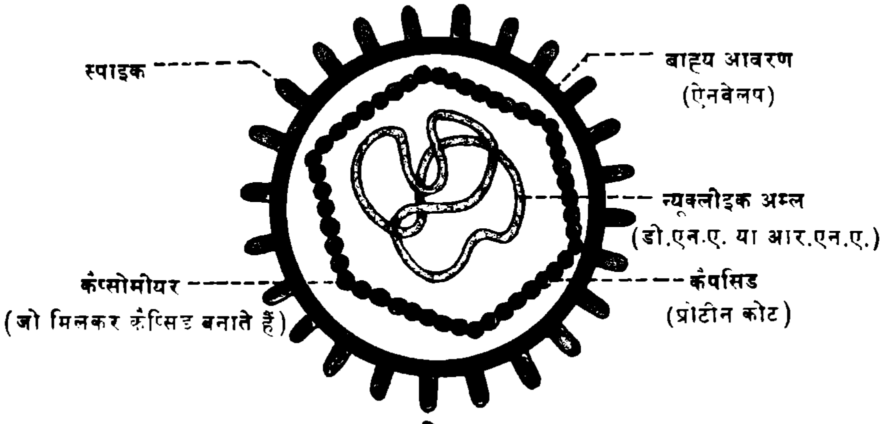
अध्याय 4

विषाणुओं का रूप, आकार एवं रचना

चेचक, एड्स, पोलियो,रेबीज, ममूस, चिकेन पाक्स, इन्फ्लुऐंजा आदि बहुत से रोग जीवाणुओं से भी सूक्ष्म जीव जिन्हें "विषाणु" कहते हैं, द्वारा होते हैं। जिस निस्यंदक (Filter) से जीवाणु छन कर नहीं निकल पाते हैं उससे ये विषाणु छनकर निकल जाते हैं। इसीलिए पहले इन विषाणुओं को निस्यंदी विषाणु (Filterable Virus) भी कहतेथे। परन्तु अब निस्यंदी शब्द को हटाकर केवल "विषाणु" शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। "विषाणु" या वाइरस शब्द का अर्थ है "विष" या "जहर"। अब विषाणु शब्द का प्रयोग उन सूक्ष्म जीवाणुओं के लिए किया जाता है जो कि अति सूक्ष्म हैं, जीवाणु- निस्यंदक से निस्यंदनीय हैं तथा सामान्य सूक्ष्मदर्शी से नहीं देखे जा सकते हैं। इनको केवल इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी की मदद से ही देखा जा सकता है। विषाणु केवल जीवित कोशिकाओं में ही वृद्धि कर सकते हैं। ये कोशिकायें चाहे मानव की हों, पशुओं की हों, पादपों की हों, कवक हों या जीवाणुओं की हों, विषाणु सभी में वृद्धि करने में सक्षम हैं तथा उनमें रोग उत्पन्न कर सकते हैं। कोशिका से बाहर होने पर ये विषाणु एक असक्रिय, अजीवित, तथा रासायनिक अणुओं के एक जटिल समूह हैं। इसलिए कुछ वैज्ञानिक इन विषाणुओं को

अजीवित कहते हैं जबकि अधिकाँश इन्हें जीवित मानते हैं क्योंकि ये जीवित कोशिकाओं के अंदर ही प्रजनन करते हैं। तथा जीवित जीवाणुओं की तरह अपने वंश की वृद्धि करते हैं। वैज्ञानिक इन विषाणुओं को जीवित और अजीवित के बीच की कड़ी मानते हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि यदि इन विषाणुओं को अच्छी तरह समझ लिया जाए तो पृथ्वी पर जीवन- उत्पत्ती की जटिल गुत्थी को अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है।

विषाणुओं के रासायनिक संगठन के अध्ययन से पता लगा है कि विषाणुओं में (1) केवल एक प्रकार का न्यूक्लीक अम्ल, "डी- आक्सीराइबो न्यूक्लीक अम्ल" (डी० एन० ए०) या राइबोन्यूक्लीक अम्ल (आर० एन० ए०) मिल सकता है। (2) न्यूक्लीक अम्ल एक ऐसे आवरण से घिरा रहता है जो कि प्रोटीन का बना होता है। और जिसे "प्रोटीन- कोट" या "कैपसिड" (Capsid) कहते हैं (चित्र 8)। (3) किन्हीं किन्हीं विषाणुओं में प्रोटीन- कोट के अतिरिक्तएक और आवरण होता है जिसे "बाह्य आवरण" या ऐनवेलप (Envelop) कहते हैं जो कि लिपिड, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट का बना होता है। जिन विषाणुओं में यह आवरण नहीं होता उन्हें "अनावृत विषाणु" (Naked Virus) कहते हैं। (4) विषाणु केवल जीवित कोशिकाओं (परपोषी कोशिका) के अंदर



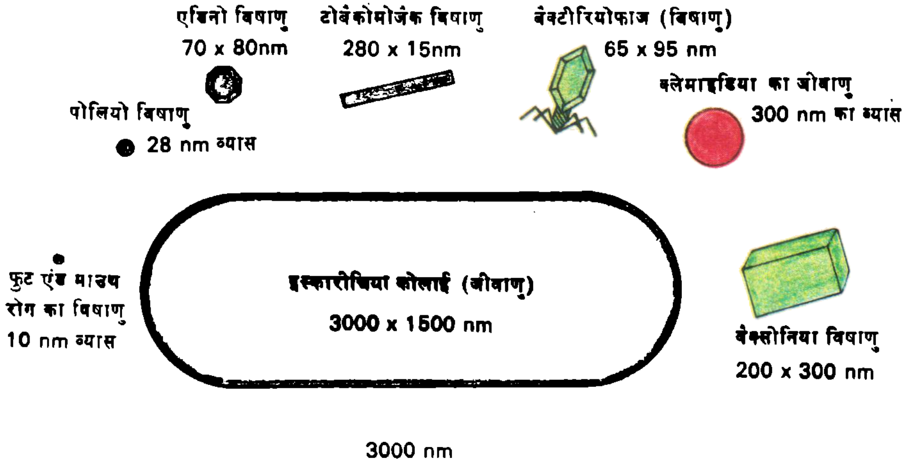
चित्र 8.

उसी के (परपोषी कोशिका के) संश्लेषण करने वाले एंजाइमों का उपयोग करके वृद्धि करते हैं। (5) वृद्धि करते समय एक ऐसे विशेष पदार्थ का निर्माण करते हैं जो विषाणु "न्यूक्लीक अम्ल" को एक कोशिका से दूसरे कोशिका तक पहुंचाने में सहायक होता है।

विषाणु मनुष्यों, पशुओं, पादपों, कवकों और जीवाणुओं में रोग उत्पन्न करने में सक्षम हैं। विषाणु मनुष्यों में चेचक, मीजल, इन्फ्लुएंजा, पोलियो, एड्स, रेबीज, कैंसर, हिपेटाइटिस, चिकेन पाक्स आदि रोग उत्पन्न करते हैं। पशुओं में विषाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाले कुछ रोग हैं- रिंडरपेस्ट, "फुट एंड माउथ" रेबीज, रानीखेत आदि। पादपों में विषाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों के नाम हैं- टोबैको मोजेक, पोटैटो ड्वार्फ, कालीफ्लावर मोजेक आदि। **वैक्टीरियोफाज** नामक विषाणु कुछ जीवाणुओं जैसे **ई० कोलाई** को नष्ट करते हैं। इस प्रकार विषाणुओं की रोग- उत्पादन- क्षमता बहुत अधिक है क्योंकि ये विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं को प्रभावित करके रोग उत्पन्न करने में सक्षम हैं। (तालिका नं. 4.1)।

विषाणुओं के आकार भिन्न-भिन्न होते हैं। इनके आकार का व्यास 10 नैनोमीटर से लेकर 300 नैनोमीटर तक हो सकता है (चित्र 9)। चित्र में कुछ विषाणुओं के आकार इस्करीचिया कोलाई नामक जीवाणु के आकार की तुलना में दिखाये गये हैं। इनमें सबसे छोटा विषाणु पशुओं में रोग उत्पन्न करने वाले "फुट एंड माउथ" का विषाणु है जो कि 10 नैनोमीटर व्यास का होता है जबकि मनुष्यों में चेचक रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु सबसे बड़ा अर्थात् 200×300 नैनोमीटर आकार(चौकोर) का होता है। यह सबसे बड़ा विषाणु है जो कि प्रकृति में पाये जाने वाले सबसे छोटे जीवाणु "क्लेमाइडिया" जिसका व्यास लगभग 300 नैनोमीटर होता है, के आकार के बराबर होता है।

विषाणुओं की खोज का इतिहास भी बड़ा रोचक है। कुछ विषाणुओं की बीमारियां सदियों पहले लोगों को पता थीं जैसे चेचक का रोग। इसको रोकने के प्रयास सैंकड़ों साल



(nm = nanometer नैनोमीटर)
चित्र 9.

पूर्व शुरू हुए थे परन्तु पहली सफलता एडवर्ड जेनर को 1796 में मिली जब उन्होंने आठ वर्ष के एक बालक जेम्स पिप्पस को चेचक रोग का टीका लगाया था। उन्होंने एक ग्वाले के हाथ में हुए काऊ पाक्स (Cow Pox) रोग द्वारा उत्पन्न घाव से निकले तरल पदार्थ को टीके के रूप में प्रयुक्त किया। उस समय न तो मनुष्यों के चेचक के विषाणु का कुछ पता था न ही काऊ पाक्स का। परन्तु जेनर द्वारा टीके के लिए प्रयुक्त यह विधि धीरे-धीरे सारे यूरोप में प्रयुक्त होने लगी और आज इस विधि के फलस्वरूप पूरे विश्व में चेचक रोग पर विजय प्राप्त कर ली गयी है। जेनर के बाद सन् 1885 में लूइस पास्चर ने फ्रांस में विषाणु द्वारा उत्पन्न रेबीज रोग के लिये टीका बनाया और आज उन्हीं की विधि में कुछ परिवर्तन करके विश्वभर में रेबीज पर विजय प्राप्त करने का अभियान जारी है। इन अनुसंधानकर्ताओं को उस समय तक इन रोगों के विषाणु के विषय में न तो पता था और न ही उसका विलगन किया जा सका था। रोगों से विषाणु विलगित करने की पहली

सफलता रूसी वैज्ञानिक दिमीत्री एवनास्की को सन् 1892 में मिली जबकि उन्होंने पहली बार तम्बाकू में मौजेक रोग उत्पन्न करने वाले "टोबेको मोजेक" विषाणु का विलगन किया। राकफ्लेकर मेडिकल इन्स्टीट्यूट के डा. विडेल स्टेनले ने तो इन टोबेको मोजेक विषाणु का किस्ट्रीकरण करके सारे विश्व को अचम्भे में डाल दिया और उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि इन विषाणुओं के क्रिस्टल को तम्बाकू की पत्ती पर डाला जाए तो मोजेक का रोग फिर उत्पन्न हो जाता है। उनके इस शोध कार्य से विषाणु जगत में झगड़ा खड़ा हो गया कि विषाणु जीवित हैं या अजीवित ? उनके इस शोधकार्य पर सन् 1946 में उन्हें नोवेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

तालिका नं. 4.1 विषाणु द्वारा उत्पन्न रोगों की विस्तृत तालिका

मनुष्यों के रोग	अन्य स्तनधारियों एवं पक्षियों के रोग	मछलियों के रोग	कीटों के रोग	पौधों के रोग
स्माल पाक्स (चेचक)	हांग कालरा	कार्प पाक्स	सेक्यूड (मधुमक्खी)	डिजीज लाइटिक रोग
चिकेन पाक्स	फुट एंड माउथ	इथीथिलियोमा आफ बारबम	पोलीहेडरल रोग	टोबैको
हरपीस सिम्पेलक्स	बेसीकुलर इंजथीमा		जिप्सी मोथ	कुकम्बर
हरपीस जोस्टर	बेसीकुलर स्टोमेटाइटिस		कैटरपिलर	टोमेटो
मोलस्कम कंटीजिओसम	केनाइन डिसटेम्पर		टेंट कैटरपिलर	लेट्यूस
रैबीज	रैबीज		यूरोपियन मोथ	कैवेज
फ्लूफीवार	इनसेफेलोमाइलाइटिस (अश्वों में)		कैटरपिलर	पोटेटो

मनुष्यों के रोग	अन्य स्तनधारियों एवं पक्षियों के रोग	मछलियों के रोग	कीटों के रोग	पौधों के रोग।
मम्स	स्वाइन इन्फ्लुऐंजा		सिल्कवर्म (जांडिस)	सुगरकेन
पोलिओमाइलाइटिस	मिक्सोमटोसिस (रैविट में)		कैलीफोर्निया	रिंगस्पाट रोग
डेंगु फीवर	रिंडरपेस्ट		ओक वर्म	टोबैको
रूवेला	शीप पाक्स		अल्फा अल्फा	ब्रेकिग रोग
रूविओला	लूपिगं इल (भेड़ों में)			
इन्फ्लुऐंजा	राउस सारकोमा			
वेस्ट- नाइल- फीवर	फाउल प्लेग			
काक्जेकी विषाणु	न्यूकौसिल रोग			
संकरण	फाउल ल्यूकीमिया			

विषाणुओं की रचना एवं रूप

न्यूक्लीक अम्ल : जैसा पहले बता चुके हैं, विषाणुओं में एक ही प्रकार का न्यूक्लीक अम्ल होता है। यह या तो डी० एन० ए० होता है या आर० एन० ए० , दोनों नहीं। इसके विपरीत मानव, पादप और जीवाणु कोशिकाओं में डी० एन० ए० एक मूलभूत प्रजनन पदार्थ के रूप में होता है और उसके साथ ही आर० एन० ए० भी अवश्य होता है, जो एक सहायक पदार्थ की भूमिका निभाता है।

विषाणु के न्यूक्लीक अम्ल, जो कि एक ही प्रकार के होते हैं, की प्रतिशत मात्रा प्रोटीन की तुलना में लगभग एक प्रतिशत होती है (जैसे इन्फ्लुऐंजा विषाणु में) जबकि वैक्टीरियोफाज नामक विषाणु में अम्ल की मात्रा बढ़कर 50% हो जाती है। विषाणु के न्यूक्लीक अम्ल की रचना में कुछ हजार न्यूक्लीयोटाइड (बेस पेयर) से लेकर ढाई लाख तक न्यूक्लीयोटाइड भाग ले सकते हैं। विषाणु में उपस्थित न्यूक्लीक अम्ल डी० एन०

ए० के अणु या तो द्विलड़ीय डी० एन० ए० (Double Stranded DNA) या एक लड़ीय डी० एन० ए० (Single Stranded DNA) हो सकते हैं। इसी प्रकार विषाणुओं में पाया जाने वाला आर० एन० ए० अणु भी एक लड़ीय आर० एन० ए० या द्विलड़ीय आर० एन० ए० हो सकता है। उदाहरण के लिये माता रोग (चेचक) के विषाणु का न्यूक्लीक अम्ल द्विलड़ीय डी० एन० ए० से बना होता है जबकि चूहों एवं हेम्स्टर में रोग उत्पन्न करने वाला एडिनो विषाणु का न्यूक्लीक अम्ल एक लड़ीय डी० एन० ए० का बना होता है। न्यूक्लीक अम्ल का एक या द्विलड़ीय गुण विभिन्न रोग के विषाणुओं को पहचानने में बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार विषाणु की रचना के अनुसार न्यूक्लीक अम्ल रेखाकार, गोलाकार, या किन्हीं विषाणुओं (जैसे इन्फ्लुऐंजा विषाणु) में छोटे छोटे कई अणुओं में बंटे रहते हैं।

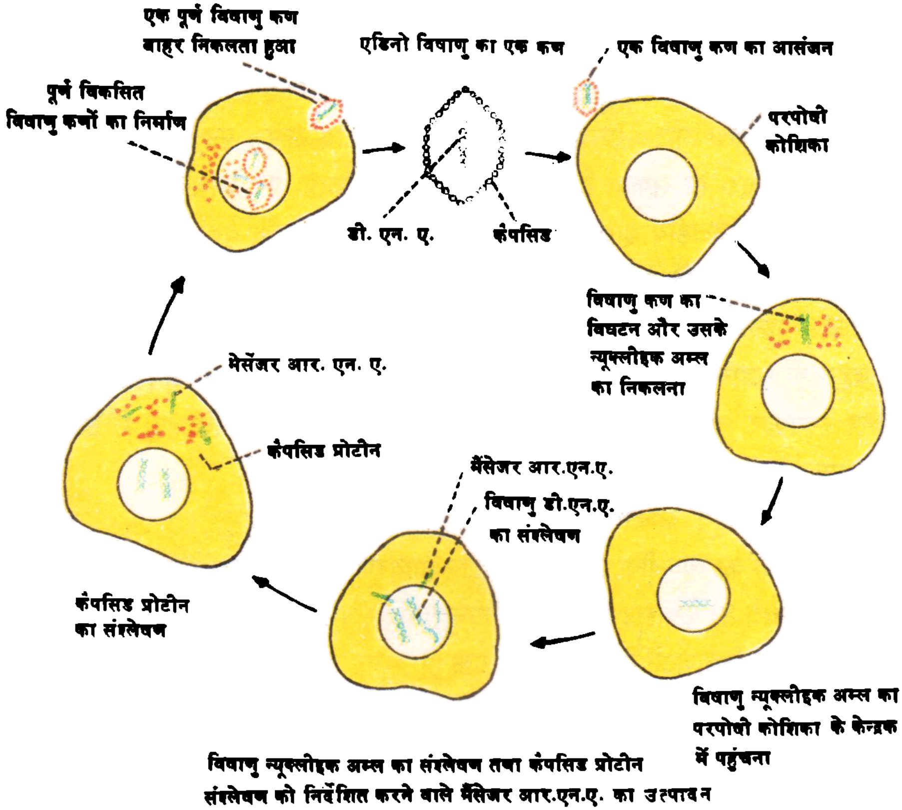
कैप्सिड और बाह्य आवरण

विषाणुओं का न्यूक्लीक अम्ल एक प्रोटीन आवरण से घिरा रहता है जिसे "कैपसिड" कहते हैं। (चित्र 8) कैपसिड छोटे छोटे प्रोटीन समूहों से मिलकर बनते हैं जिन्हें कैप्सोमीयर कहते हैं। कुछ विषाणुओं में कैप्सोमीयर एक ही प्रकार के प्रोटीन से बने होते हैं। जबकि अन्य विषाणुओं में कैप्सोमीयर में कई प्रकार के प्रोटीन उपस्थित होते हैं।

कुछ विषाणुओं में कैपसिड के ऊपर एक और बाह्य आवरण होता है। जो लिपिड, प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट के सम्मिश्रण से बना होता है। इन्फ्लुऐंजा विषाणु कणों के बाह्य आवरण की बाहरी सतह पर एक अन्य रचना होती है जिसे "स्पाइक" कहते हैं। यही विषाणु लाल रक्त कणों के बीच जुड़कर रुधिर समूहन (Haemagglutination) कर देते हैं। जिन विषाणुओं में यह बाह्य आवरण नहीं होता उन्हें "अनावृत विषाणु" कहते हैं।

विषाणु एक परपोषी कोशिका में वृद्धि करके कैसे रोग उत्पन्न करते हैं ?

संदूषण के समय परपोषी- कोशिका के पास पहुँचकर विषाणु- कण परपोषी कोशिका



चित्र 10.

की बाह्य सतह पर आसंजित हो जाते हैं। आसंजन के उपरान्त विषाणु- कण परपोषी कोशिका के अंदर अंतःपुटिका की मदद से पहुंच जाते हैं (चित्र 10)। परपोषी कोशिका द्रव के अंदर विषाणु कण का न्यूक्लीक अम्ल निकलकर परपोषी कोशिका के केन्द्रक में पहुंच जाता है। यहां यह अपने लिए कुछ विशेष एंजाइम बनाता है। ये एन्जाइम विषाणु

कणों के बनने के लिए आवश्यक न्यूक्लीक अम्ल बनाते हैं। बने हुए न्यूक्लीक अम्ल अणु कुछ नये मेसेंजर आर० एन० ए० बनाते हैं जो कि परपोषी कोशिका के जीव- द्रव में पहुंचकर तथा परपोषी कोशिका संश्लेशण तंत्रिका का उपयोग करके विषाणु के लिए कैपसिड प्रोटीन का संश्लेषण करते हैं। बाद में यही प्रोटीन अणु परपोषी कोशिका के केन्द्रक में पहुंच कर विषाणु के न्यूक्लीक अम्ल के चारों तरफ कैपसिड आवरण बनाकर एक नये विषाणु कण की रचना कर देते हैं (चित्र 10) धीरे-धीरे नये विषाणु कणों की संख्या परपोषी कोशिका में बढ़ जाती है तथा कोशिका नष्ट हो जाती है और उनसे निकले असंख्य विषाणु कण नये परपोषी कोशिकाओं को प्रभावित करने के लिए बिखर जाते हैं। इस प्रक्रिया में जैसे जैसे विषाणु कणों की संख्या बढ़ती जाती है परपोषी में उस रोग के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। विषाणु कण के परपोषी कोशिका में वृद्धि करने की कुछ अवस्थाओं को चित्र 10 में दर्शाया गया है। विषाणु कणों की परपोषी कोशिकाओं को नष्ट करने की क्षमता को "साइटोपैथिक इफेक्ट" (Cytopathic Effect या CPE) कहते हैं। विषाणु के इस गुण के कारण इनसे उत्पन्न रोगों के निदान में बहुत सहायता मिलती है। सी० पी० ई० का एक प्रकार का अंतःस्थ पिंड (Inclusion Body) होता है जो कि परपोषी कोशिका के केन्द्रक या कोशिका- द्रव में परिपक्व या अपरिपक्व विषाणुओं के संचयन से बनते हैं। रेबीज एक भयानक रोग है जो कि मनुष्यों को पागल कुत्तों के काटने से होता है। इससे मनुष्य पागल होकर मर जाता है। इसके लक्षण यदि एक बार उत्पन्न हो जायें तो इलाज असंभव है। इस रोग का निदान मृत रोगी- कुत्ते के तंत्रिका कोशिका में नेग्री बाडी नामक अंतःस्थ पिंड की उपस्थिति से ही किया जाता है।

विषाणु जन्य रोग से ग्रसित रोगी के शरीर में एक महत्वपूर्ण पदार्थ "इन्टरफिरान" का निर्माण होता है जो कि परपोषी- कोशिका को विषाणु के संक्रमण से बचाता है। आजकल "संश्लेषित इंटरफिरान" से विषाणु रोगों एवं कैंसर से मनुष्यों के बचाव के

प्रयास किये जा रहे हैं।

विषाणु और कैंसर : जब कोशिकाएं अनियमित रूप से वृद्धि करने लगती हैं तो उनसे जो ऊतक (Tissue) बनता है उसे "ट्यूमर" (Tumour) कहते हैं। जब "ट्यूमर" सांधातिक रूप से शरीर में फैलने लगते हैं तब इन्हें "सांधातिक ट्यूमर" (Malignant Tumour) कहते हैं। सांधातिक कोशिकाएं अनियंत्रित रूप से वृद्धि करके पूरे शरीर में व्याप्त हो जाती हैं और मृत्यु का कारण बन जाती हैं। हर प्रकार के कैंसर में सांधातिक ट्यूमर नहीं बनते बल्कि कुछ कोशिकाएं जैसे कि श्वेत- रक्त- कणिकाएं यदि कैंसर कोशिका के रूप में परिवर्तित होती है तो श्वेत- रक्त- कणिकाओं की संख्या रक्त में बढ़ जाती है यही "ल्यूकोमिया नामक कैंसर" के रूप में जाना जाता है।

1908 में यह प्रथम बार ज्ञात हुआ कि कैंसर का सम्बन्ध विषाणुओं से है। मुर्गियों में ल्यूकोमिया का रोग "निस्यंदकीय कोशिका रहित पदार्थ" से उत्पन्न किया जा सकता है। चुहियों में स्तन का ट्यूमर माँ से बच्चों में उसके दूध के माध्यम से फैलता है।

वैज्ञानिकों का मत है कि स्वस्थ केन्द्रकीय कोशिकाओं के क्रोमोसोम में कैंसर उत्पादी- जीन होते हैं जिन्हें आंकोजीन (Oncogene) कहते हैं। इनमें यदि किसी प्रकार का परिवर्तन आ जाये तो वह कोशिका "कैंसर- कोशिका" में परिवर्तित हो जाती है। सामान्य दशा में "आंकोजीन" एक ऐसा प्रोटीन बनाते हैं जो कोशिका की सामान्य वृद्धि के लिए आवश्यक हैं, परन्तु इस आंकोजीन में किसी प्रकार का उत्परिवर्तन (Mutation) होने पर यह कोशिका को "कैंसर- कोशिका" में परिवर्तित कर देता है। आंकोजीन में यह उत्परिवर्तन कई कारणों से हो सकता है जैसे विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तन लाने वाले रसायन पदार्थ, रेडियोधर्मिता और विषाणु। जो विषाणु ट्यूमर उत्पन्न करने में समर्थ हैं उन्हें "आंकोजीन विषाणु" (Oncogene Virus) कहते हैं। मानव/पशु कोशिकाओं में अब तक 24 आंकोजीन का पता लग चुका है (तालिका 4.2) इस तालिका में कुछ

तालिका 4.2 मानव कोशिकाओं से विलगित कुछ प्रतिनिधि कोशिका आंकोजीन

आंकोजीन	कैंसर कोशिका	विषाणु	मानव गुण सूत्रों में उपस्थित गुणसूत्रों की संख्या
एब्ल (abl)	क्रानिक माइलोजीन ल्यूकीमिया	एवलसन क्यूराइन ल्यूकीमिया विषाणु	9
फेस (fes)	एक्यूट प्रोमाइलोसिटिक ल्यूकीमिया	फिलाइन सारकोमा विषाणु	15
फास (fos)	बरकिट लिम्फोमा	एफ० बी० जे० आस्टीयोसारकोमा विषाणु	2
मास (mos)	एक्यूट माइलोब्लास्टिक ल्यूकीमिया	मोलोनीम्यूराइन सारकोमा विषाणु	8
मिब (myb)	एक्यूट लिम्फोसिटिक ल्यूकीमिया	एवियन माइलोब्लास्टोसिस विषाणु	6
मिक (myc)	बरकिट लिम्फोमा	एवियन माइलोसाइटोमटोसिस विषाणु	8
रास एच- 1 (ras H1)	विल्मूस ट्यूमर	हारवे म्यूराइन सारकोमा विषाणु	11
रास एन (ras N)	एक्यूट लिम्फोसिटिक ल्यूकीमिया	विषाणुओं द्वारा नहीं	1
रास के- 2 (ras K-2)	ल्यूकीमिया लिम्फोसिटिक ल्यूकीमिया	क्रिस्टेन म्यूराइन सारकोमा विषाणु	12
सिस (sis)	बरकिट लिम्फोमा क्रानिकमाइलोजीनस ल्यूकीमिया	सिमियन सारकोमा विषाणु	22

(पीडी यूस्टेचिओ एवं एल फिरू (1984) के सौजन्य से, अमेरिकन साइंटिस्ट <u>92</u>,34-40, वायोसाइंस <u>34</u>,75-77)

विषाणुओं के भी नाम दिये गये हैं जो कि ट्यूमर उत्पन्न करने से संबंधित पाये गये हैं। अभी हाल ही में वेलर कालेज आफ मेडिसिन के डा० विलियम टी० शीरर ने प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि मनुष्यों में ई० वी० विषाणु का संबंध कैंसर उत्पादन से है।

सामान्य कोशिकाएं जब वृद्धि करती हैं तो वे फैलती हैं उनका यह फैलाव तब रुक जाता है जब उनका संसर्ग एक दूसरी फैलती कोशिका से होता है। सामान्य कोशिकाओं के गुण को "कांटैक्ट इन्हीबिशन" कहते हैं। जब कोशिकाएं कैंसर कोशिकाएं बन जाती हैं तो उनका यह "कांटैक्ट इन्हीबिशन" गुण खत्म हो जाता है और वे वृद्धि करते-करते ट्यूमर का रूप धार लेती हैं। परिवर्तित कैंसर- कोशिका की ऊपरी सतह पर एक विशेष प्रतिजन (Antigen) उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें ट्यूमर स्पेसिफिक "ट्रांस्प्लांटेशन एंटीजन" (टी० एस० टी० ए०) कहते हैं तथा उनके केन्द्रक में एक और भी प्रतिजन और उत्पन्न हो जाता है जिसे टी० एंटीजन कहते हैं। यह भी देखा गया है कि कैंसर- कोशिका सामान्य कोशिकाओं से बड़ी तथा गोल हो जाती है। इन परिवर्तित कोशिकाओं के गुणसूत्रों की संख्या भी असामान्य हो जाती है और वे केन्द्रक में टूटे फूटे दिखाई पड़ते हैं।

अध्याय 5

जीवाणु-हनन

अगर शरीर कहीं कट जाता है तो माता-पिता बच्चों से कहते हैं– साफ करके डेटॉल या टिंचर लगा लो। ये पदार्थ क्या करते हैं ? ये पदार्थ घाव में उपस्थित जीवाणुओं का हनन करते हैं जिससे कि घाव में पस न पड़े।

वैज्ञानिक विधि से जीवाणुओं का हनन लगभग 100 वर्ष पूर्व शुरू हुआ था। उससे पहले जब महामारी जैसे प्लेग, हैजा, चेचक आदि फैलती थी तो घर के घर, गाँव के गाँव मनुष्यों से विहीन हो जाते थे। आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाली जीवाणु हनन विधियों के जन्मदाता दो वैज्ञानिक माने जाते हैं। इनमें से एक थे हंगरी के सेमेलवीस (1816-1865) जो वियना के अस्पताल में चिकित्सक थे। उन्होंने अस्पताल के हर चिकित्सक एवं कार्यकर्ता को यह आदेश दिया था कि वे अपने हाथों को क्लोरीन युक्त पानी से धोयें। उनकी इस विधि से अस्पताल में विभिन्न रोगों के मरीजों की संख्या कम हो गयी थी। दूसरे वैज्ञानिक थे इंग्लैंड के डाक्टर लिस्टर जिन्होंने रोगाणुरोधक शल्यचिकित्सा (Antiseptic Surgery) को जन्म दिया। उन्होंने यह बताया कि शल्यक्रिया में प्रयुक्त होने वाले औजारों को रोगाणु रहित या निर्जर्मीकरण

(Sterilization) करने के लिए उनको गरम करना चाहिए तथा घावों पर फिनाल का प्रयोग करना चाहिए। आज इन दोनों वैज्ञानिकों के सिद्धांतों में बहुत प्रगति हो चुकी है तथा जीवाणु- हनन की अत्यन्त आधुनिक विधियों का विकास हो चुका है।

पिछले अध्यायों में हम यह जान चुके हैं कि जीवाणुओं की दो मुख्य अवस्थाएं होती हैं - एक अवस्था जिसमें जीवाणुओं के अन्दर बीजाणु नहीं बनते हैं जैसे कि **ई० कोलाई, साल्मोनिला, शिगिला** आदि। जीवाणुओं की दूसरी अवस्था वह है जिसमें जीवाणुओं में **अनुपयुक्त** वातावरण में बीजाणु बनते हैं जैसे कि **क्लास्ट्रिडियम, एंथ्रेक्स, टेटेनस** के जीवाणु। बीजाणु जनक जीवाणु हनन- प्रक्रिया तथा रसायनों से जल्दी नहीं मरते हैं। इसलिए जीवाणु हनन करने वाले रसायनों की उपयुक्तता तभी मानी जाती है जब वे बीजाणु- जनक जीवाणुओं को आसानी से नष्ट कर सकें।

जीवाणु- हनन के विषय में विस्तार से समझने से पूर्व उनसे संबंधित कुछ पारिभाषिक शब्दों के विषय में जानना आवश्यक है।

स्टेरिलाइजेशन (Sterilization) (निर्जर्मीकरण) : निर्जर्मीकरण जीवाणु- हनन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी पदार्थ या वस्तु पर उपस्थित जीवाणुओं के विभिन्न प्रकार एवं उनकी सब अवस्थाएं बिल्कुल नष्ट हो जाती है।

डिसइनफैक्शन (Disinfection) (विसंक्रमण) : यह जीवाणु हनन की वह प्रक्रिया है जिसमें हर प्रकार के बीजाणु रहित जीवाणु लगभग नष्ट हो जाते हैं। परन्तु बीजाणुयुक्त जीवाणु एवं विषाणु इस प्रक्रिया से बच सकते हैं। विसंक्रामक पदार्थ मुख्यतः रसायन होते हैं जो यदि किसी वस्तु पर लगाये जायें तो जीवाणु की वृद्धि रोक देते हैं या उनकी संख्या घटा देते हैं परन्तु पूर्ण निर्जर्मीकरण नहीं होता।

एंटीसेप्सिस (Antisepsis) (रोगाणुरोधक) : इस प्रक्रिया में ऐसे रसायनों का उपयोग होता है जो कि विसंक्रमण के लिए त्वचा या श्लेष्मिक झिल्लियों पर लगाये जा सकते हैं।

ये विसंक्रामक पदार्थों की तुलना में कम ही तनुता के प्रयुक्त होते हैं ।

जर्मीसाइड (Germicide) **(जर्मनाशी)** : ऐसे रसायन हैं जो कि बीजाणु रहित जीवाणु को तो मार देते हैं परन्तु बीजाणुयुक्त जीवाणुओं पर इनका प्रभाव नहीं होता । ऐसे रसायन जो कि बीजाणुओं को मारते हैं बीजाणुनाशक (स्पोरीसाइड, Sporicide) कहलाते हैं । जो कवकों को मारने में समर्थ हैं उन्हें कवकनाशी (फंगीसाइड, Fungicide) तथा जो विषाणुओं को मारने में सक्षम हैं उन्हें विषाणुनाशी (वाइरूसाइड, Virucide) रसायन कहते हैं ।

बैक्टीरियोस्टेसिस (जीवाणु निरोध, Bacteriostasis) : यह एक परिस्थिति है जिसमें जीवाणुओं की वृद्धि और गुणन दब जाते हैं परन्तु जीवाणु मरते नहीं हैं। यदि जीवाणु- निरोधी पदार्थ को हटा लिया जाये तो जीवाणु की वृद्धि एवं गुणन फिर शुरू हो जाता है ।

एसेप्सिस (Asepsis) **(अपूती)** : किसी स्थान या पदार्थ से रोगजनक जीवाणु की अनुपस्थिति अपूति अवस्था कहलाती है । अपूतिक विधियाँ रोगजनक जीवाणुओं को शरीर में घुसने से रोकती हैं ।

सैनिटाइजेशन (Sanitization) **(स्वच्छीकरण)** : किसी पदार्थ या स्थान से यांत्रिक या रासायनिक विधि से रोगजनक जीवाणुओं की संख्या इतनी कम कर देना कि स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित हो जायें । इस प्रक्रिया को स्वच्छीकरण कहते हैं ।

जीवाणु-हनन की विधियाँ

भौतिक विधियाँ

1. **ऊष्मा से जीवाणु हनन** : यह जीवाणु हनन की विधि हमारे दैनिक जीवन में सबसे ज्यादा प्रयुक्त की जाती है, ऊष्मा का प्रयोग जीवाणु हनन के लिये कई प्रकार से किया जाता है ।

(क) **आर्द्र ऊष्मा (Moist Heat)** : यह उबलते पानी के रूप में प्रयोग की जाती है। उबलते पानी का ताप लगभग $100^{\circ}C$ होता है तथा इस ताप पर अबीजाणुक रोगकारी जीवाणु लगभग 10 मिनट में नष्ट हो जाते हैं। बीजाणुक जीवाणु तथा विषाणु इस ताप पर नष्ट नहीं होते। हेपेटाइटिस रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु उबलते पानी में 30 मिनट तक जीवित रह सकते हैं जबकि बीजाणुयुक्त जीवाणु उबलते पानी के ताप को 20 घंटे तक सहन कर सकते हैं। वैसे पानी या भोजन को कुछ मिनट तक उबाला जाए तो उसमें उपस्थित लगभग सभी रोगकारी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। दैनिक जीवन में उबलते पानी का उपयोग मरीजों के कपड़ों को उबालकर उनमें उपस्थित रोगकारी जीवाणुओं को नष्ट करने तथा अस्पतालों में इंजेक्शन लगाने वाली सिरिंज, सुई तथा कैंची आदि को जीवाणु रहित करने के लिए किया जाता है।

(ख) **दाब पर ऊष्मा** : इस विधि में ऊष्मा का उपयोग दाब पर किया जाता है। यह पाया गया है कि यदि पानी के उबलने पर दाब बढ़ाया जाए तो पानी के उबलने का ताप बढ़ जाता है। 15 पौंड दाब पर पानी के उबलने का ताप $100^{\circ}C$ से बढ़ कर $121^{\circ}C$ हो जाता है। इस ताप पर जीवाणु के अबीजाणुक एवं बीजाणुक के सभी प्रकार, 15 मिनट के अंदर नष्ट हो जाते हैं। इस सिद्धान्त पर ही आधारित निर्जर्मीकरण यंत्र जैसे आटोक्लेव और प्रेशर कुकर बने हैं। इस विधि से जीवाणु की वृद्धि के लिए संवर्ध (Media) पदार्थों का निर्जर्मीकरण किया जाता है। यह विधि प्रयोगशालाओं में बहुत उपयोगी पायी गयी है तथा प्रेशर कुकर का उपयोग हमारे दैनिक जीवन में बहुत ही अधिक बढ़ गया है।

(ग) **शुष्क ऊष्मा से जीवाणु- हनन** : इस विधि में संदूषित पदार्थ, जैसे मलमूत्र, रक्त आदि को सीधे जला दिया जाता है जिससे इन पदार्थों से संक्रमण फैलने

का उद्‌गम ही खत्म हो जाए । मृत्युपरांत शव का निस्तारण भी जलाकर ही किया जाता है । यह विधि हमारे देश में सदियों से चल रही है और अब विश्व में जगह-जगह शवदाह- गृह बनाये जा रहे हैं । अगर शव में रोगाणु भरे हों तो वे शव के साथ जल कर हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं ।

प्रयोगशालाओं में शीशे का सामान, जैसे सिरिंज, फ्लास्क, पेट्रीडिश आदि की निर्जर्मीकरण शुष्क ऊष्मा का प्रयोग करके और उनको हाट- एअर ओवेन में रखकर किया जाता है जिसमें इन सामानों को निर्जर्मीकरण करने के लिए $170^{0}C$ पर दो घंटे रखा जाता है । इस उपचार से सब प्रकार के जीवाणु (बीजाणुक और अबीजाणुक) विषाणु आदि बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं तथा वह सामान या पदार्थ निर्जर्मीकृत हो जाता है ।

2. **पास्चुरीकरण (Pasteurisation)** : लुई पास्चर ने बहुत समय पूर्व शराब, बीयर में सड़न रोकने के लिए एक विधि विकसित की थी जिसमें उन्होंने इन पदार्थों को हलके से गरम करने की संस्तुति की । उन्होंने यह पाया कि इस विधि से वे सब जीवाणु नष्ट हो गये जो शराब और बीयर में सड़न उत्पन्न कर रहे थे । उनकी इस विधि का नाम पास्चुरीकरण हो गया है तथा इसका उपयोग दूध, फलों का रस तथा मक्खन आदि के पास्चुरीकरण के लिए किया जाता है । इसकी दो विधियाँ हैं । पहली विधि में पदार्थ को $65^{0}C$ पर 30 मिनट तक रखते हैं जबकि दूसरी विधि में जिसे एच० टी० एस० टी० भी कहते हैं, पदार्थ को $72^{0}C$ पर 15 सैकेण्ड के लिए रखते हैं । इससे दूध में जीवाणु की संख्या घट जाती है और दूध जल्दी खराब नहीं होता। इस उपचार से कुछ रोगों (जैसे ब्रुसेला, टी० बी०, क्यूफीवर) के रोगाणु भी मर जाते हैं जिससे दूध स्वास्थ्यकर बन जाता है ।

3. **आयनीकरण विकिरण विधि से जीवाणु हनन** : विकिरण विधि से भोज्य पदार्थों

में जीवाणु हनन का उपयोग बढ़ता चला जा रहा है। इस विधि में सूक्ष्म जीवों के अलावा छोटे छोटे अन्य कीड़े- मकोड़े तथा सूअर के मांस से होने वाले भयानक रोग ट्रिकनोसिस के कारक भी नष्ट हो जाते हैं। आजकल कुछ दवाओं के एवं चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले सिरींज, प्लास्टिक पदार्थों, दस्तानों तथा शल्य चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले धागों आदि के निर्जर्मीकरण करने के लिए आयनीकरण विकिरण का उपयोग किया जाता है।

आयनीकरण विकिरण के अंतर्गत यू० वी० (UV) किरणें आती हैं। इनका उपयोग जीवाणु हनन के लिए किया जा रहा है। यू० वी० किरणें, जिनका तरंग दैर्ध्य 360 नैनोमीटर होता है, जीवाणुओं को नष्ट करने में बहुत ही सक्षम होती हैं। आजकल अस्पतालों एवं प्रयोगशालाओं के कमरों को जीवाणु रहित करने के लिए यू० वी० लाइट का उपयोग अत्यधिक तेजी से हो रहा है। सूर्य प्रकाश में भी यू० वी० किरणें होती हैं जो सूर्य के प्रकाश की जीवाणुनाशन क्षमता के लिए उत्तरदायी होती है।

रासायनिक विधि से जीवाणु हनन

फीनॉल शायद वह प्रथम रसायन है जिसका उपयोग डा० लिस्टर ने एंटीसेप्टिक सर्जरी में किया था, परन्तु इसका उपयोग इसकी महक और त्वचा पर जलन पैदा करने के कारण कम होता जा रहा है। एंटीसेप्टिक के रूप में इसका 1% घोल संक्रमित चाकू, कैंची आदि के धोने के तथा संक्रमित हाथ के धोने में उपयोगी पाया गया है। संक्रमित थूक, पस, मल, मूत्र, रक्त आदि को फीनॉल से विसंक्रमित करने के लिए फीनॉल का 1:20 घोल बहुत उपयोगी पाया गया है। फीनॉल से भी सुधरे कई अन्य रसायन जैसे क्रिओजाल, लाइसोल बन चुके हैं जिनका उपयोग जीवाणु हनन के लिए खूब किया जाता है। अस्पतालों में एवं घरों में विसंक्रमण के लिए 3 से 5% फीनॉल पदार्थों का घोल रोगी के कमरों के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है। फीनॉल का 1:20 घोल रोगी के लिए

प्रयुक्त होने वाले थर्मामीटर को रखने के लिए उपयोगी पाया गया है।

ब्लीचिंग पाउडर (Bleaching Powder) : इसका उपयोग दैनिक जीवन में बहुत अधिक होता है। पीने के पानी में रोगाणुओं को मारने के लिए इस रसायन का उपयोग बहुत समय से हो रहा है। पानी के संसर्ग में आते ही ब्लीचिंग पाउडर से "नवजात क्लोरीन" एवं "आक्सीजन" निकलती है जो पानी में उपस्थित जीवाणुओं एवं अन्य रोगाणुओं को मारने में सक्षम होती है। घरों में पीने के पानी को जीवाणु रहित करने के लिए ब्लीथिंग पाउडर का एक संचित घोल (3.42 ग्राम, ब्लीथिंग पाउडर 500 मिलीलिटर पानी में मिलाकर) बना सकते हैं। जब पीने के पानी में जीवाणुओं को मारना हो तो इस संचित घोल की 90 बूंद 10 लीटर पानी में मिला दें और 30 मिनट तक रसायन को कार्य करने दें। इसका उपयोग कॉलरा, अतिसार, टायफाइड आदि जैसे रोग के फैलने पर घरों में स्वास्थ्य रक्षा के लिए करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि कहीं बदबू फ़ैली हो तो ब्लीथिंग पाउडर का सूखे पाउडर के रूप में वहां उपयोग करना चाहिए। यह बदबू नष्ट कर देता है जैसे कि नालियों में रोगी विसर्जित मल- मूत्र, कफ आदि में उपस्थित रोगाणुओं को मारने के लिए ब्लीथिंग पाउडर का उपयोग बहुत ही लाभकारी पाया गया है।

चूना : यह सबसे सस्ता विसंक्रामक पदार्थ है। चूने के घोल से प्रतिवर्ष घरों में पुताई कराने से दीवारों एवं अन्य जगहों पर जहां जीवाणु मौजूद होते हैं, चूने के कारण नष्ट हो जाते हैं। चूने पाउडर का प्रयोग रोगी मनुष्य के मल, मूत्र, कफ आदि में उपस्थित जीवाणुओं को भी नष्ट करने के लिए किया जाता है।

पोटेशियम परमैगनेट (लाल दवा) : यह रसायन भी जीवाणु हनन के लिए प्रयुक्त होता है। जब कॉलरा, फैला हो तो कुओं का पानी इससे उपचारित किया जाता है। इसके लिए लगभग 120 ग्राम लाल दवा एक बाल्टी पानी में घोल कर कुंए में डाल देते हैं और 8 घंटे तक कुंए के पानी को ऐसे ही रहने देते हैं। जब टायफायड या गेस्ट्रोइंटेराइटिस का रोग

फैला हो तो साग, सब्जी, फल आदि को घर में लाल दवा के घोल (1:1000) से धोकर खाना चाहिए।

दैनिक जीवन में प्रतिदिन काम आने वाले कुछ रोगाणुरोधक (Antiseptic) पदार्थ

(क) एक्रीफ्लेविन (पीली दवा) : इसका घोल (1:1000) भरते हुए घाव को धोने तथा उस पर लगाने के लिए बहुत ही अच्छा रोगाणुरोधक पदार्थ माना गया है।

(ख) डेटॉल : यह एक बहुत ही अच्छा रोगाणुरोधक रसायन है। इसके 1% घोल को शरीर के कहीं भी कट जाने पर उसे तुरन्त धोने के लिए उपयोग किया जाता है। दाढ़ी बनाने के बाद 1% घोल लगाने पर कभी फोड़े, फुंसी उस जगह उत्पन्न नहीं होते।

(ग) क्रिस्टल वायलेट (बैंगनी रंग) : इसका 1% घोल शरीर में कहीं जल जाने पर पके घाव पर, कवक रोग पर किसी पुराने घाव पर लगाने के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है।

(घ) टिंक्चर आयोडीन : यह घाव पर लगाने के लिए बहुत ही अच्छी रोगाणुरोधक दवा मानी जाती है। इसको घर में आसानी से बनाया जा सकता है। 100 मिलीलीटर अल्कोहल (50% तनुता का) में 2.35 ग्राम सोडियम आयोडाइड तथा 2 ग्राम आयोडीन मिलाकर एक भूरे रंग की शीशी में रख लें।

(ङ) आँख धोने के लिए बोरिक एसिड का घोल : 3.4 ग्राम बोरिक एसिड उबालकर ठंडा किये 100 मिलीलीटर पानी में मिलायें। आँखें दुखने पर एक भाग बोरिक एसिड का घोल तथा एक भाग उबला ठंडा पानी मिलाकर उससे आँखें धोने के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है।

(च) खून बहने को रोकने के लिए : कहीं चोट लग जाने पर या कट जाने पर यदि खून बहना शुरू हो जाए तो एक दवा मार्केट में दवा की दुकान पर मिलती है जिसे "टिंक्चर बेंजेइन को" कहते हैं, किसी गाज क्लाथ या जरा सी साफ रूई पर लगाकर घाव पर लगा देना चाहिए यह अपने आप चिपक जायेगा और कुछ मिनटों में खून का निकलना बंद कर देता है। यह रोगाणुरोधक भी है जिससे घाव पकेगा भी नहीं परन्तु इस पर पानी नहीं पड़ना चाहिए।

(छ) एंटीबायोटिक क्रीम : छोटे- छोटे घावों तथा आंख में लाली एवं सूजन होने पर एंटीबायोटिक क्रीम का उपयोग लाभकारी पाया गया है। मार्केट में मिलने वाले कुछ एंटीबायोटिक का नाम है पेनिसिलिन आई आयंटमेंट, टेरामाइसिन आयंटमेंट, क्लोरोमाइसिटीन आयंटमेंट आदि।

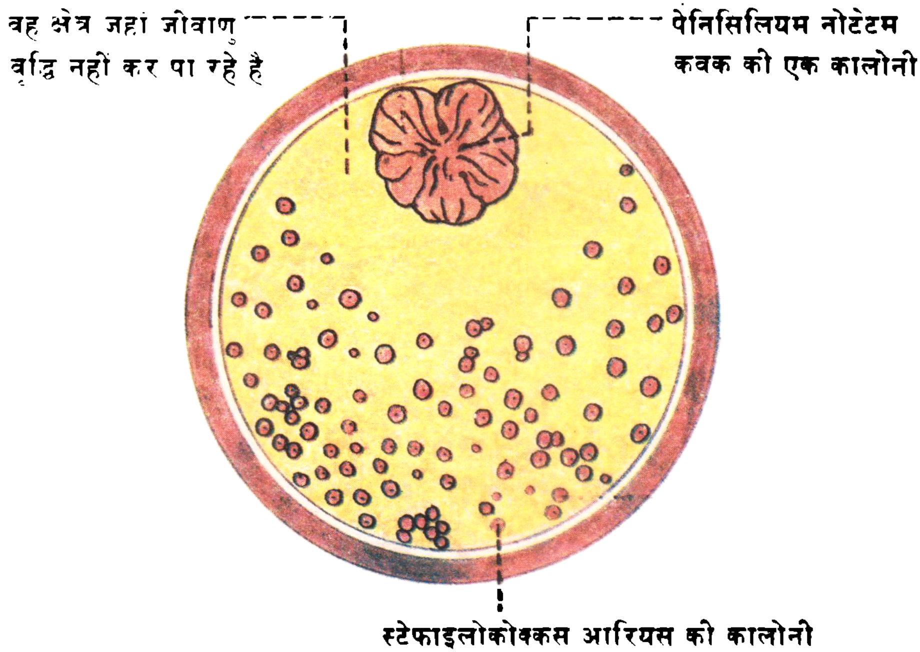
अध्याय 6

जीवाणु जनित एंटीबायोटिक और अन्य औषधियाँ - रोगों के उपचार में

हम देखते हैं कि ज्यों ही बच्चे को बुखार आता है उसके माता- पिता तुरंत उसे डाक्टर के पास ले जाते हैं। डाक्टर बच्चे का बुखार नापकर उसके फेफड़ों और दिल की जांच करता है। रोग के विषय में विस्तार से पूछताछ करता है, उसके सम्भावित कारणों की जानकारी प्राप्त करता है जैसे वह जानना चाहता है कि बुखार ठंड से तो नहीं आया। गले में खराश तो नहीं है ? खांसी तो नहीं आती है ? पूर्ण जानकारी के बाद कभी-कभी वह पानी में उबाली सिरींज और सुई लेकर उसमें दवाई भरकर बच्चे की बांह पर लगा देता है। ऐसा क्यों ? यह दवा क्या थी ? यह दवा एंटीबायोटिक थी जो कि शरीर के अन्दर जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए सुई द्वारा पहुंचाई गई।

एंटीबायोटिक वे रासायनिक पदार्थ हैं जो कि जीवाणुओं से उत्पन्न होते हैं और उनकी बहुत ही कम मात्रा जीवाणुओं को मारने में सक्षम होती हैं। सन् 1929 में अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने देखा कि **संवर्ध** (Culture) की एक प्लेट में जिसमें **स्टेफाइलोकोकाई आरियस** नामक जीवाणु संवर्धन के लिए डाला गया था, की वृद्धि एक कवक (Fungi) की कालोनी

के पास चारों तरफ नहीं हो पायी, जबकि अन्य जगह पर जीवाणु ने अच्छी तरह से वृद्धि कर ली थी। उन्होंने इस पर अपना यह मत प्रकट किया कि कवक जो कि **पेनिसिलियम नोटेटेम** था, एक ऐसा पदार्थ बना रहा था जो कि **स्टेफाइलोकोकाई आरियस** नामक जीवाणु को मार रहा था (चित्र 11)। उनके इस अनुसंधान का उपयोग द्वितीय विश्व युद्ध में घाव में "पस" पड़ने के कारण मरने वाले फौजियों की जीवन रक्षा के लिए किया गया। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के लोरी और चेन नामक वैज्ञानिकों ने उपर्युक्त कवक से "पेनिसिलिन" नामक पदार्थ शुद्ध रूप से विलगित किया और औषधि के रूप में इसका उपयोग फौजियों पर किया। इसके बाद पेनिसिलीन का उपयोग विश्वभर में महत्वपूर्ण



चित्र 11.

बीमारियों की रोकथाम के लिए किया जाने लगा। यही नहीं उसके बाद पेनिसिलिन जैसे एंटीबायोटिक की खोज में बाढ़ आ गयी और आज हम एंटीबायोटिक के युग में इन जीवाणुजनित रोगों से निडर होकर घूम रहे हैं। पहले प्लेग, हैजा, टायफाइड और टी० बी० जैसे रोग असाध्य माने जाते थे और बीमार मनुष्य जीने की आशा छोड़ देता था। परन्तु आज ये बीमारियां असाध्य नहीं हैं एंटीबायोटिक के प्रयोग से ठीक हो जाती हैं। अब मानव इन रोगों का नाम भी भूलता जा रहा है। आज तक कई हजार एंटीबायोटिकों का पता लग चुका है परन्तु हम दैनिक जीवन में इनमें से कुछ का ही उपयोग अधिकता से करते रहे हैं। नीचे एक तालिका दी जा रही है जिसमें विभिन्न जीवाणुओं से उत्पन्न किये जाने वाले एंटीबायोटिक के नाम दिये गये हैं (तालिका 6.1)।

तालिका 6.1

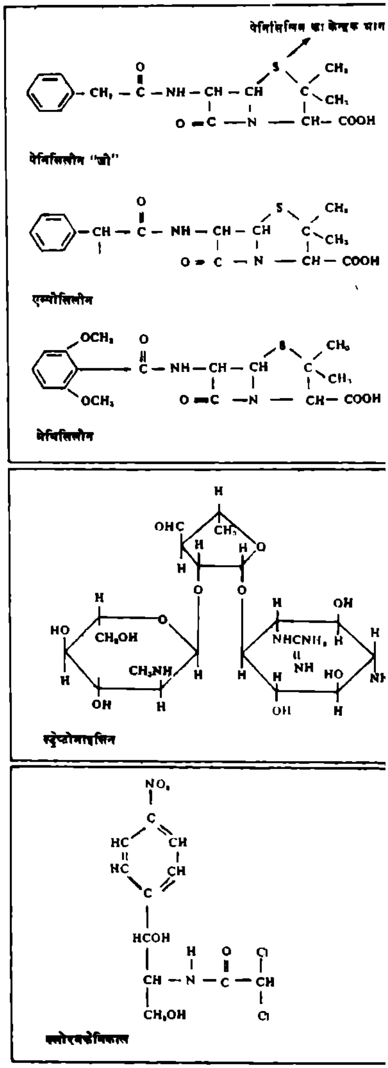
विभिन्न जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले एंटीबायोटिक

जीवाणु	एंटीबायोटिक
बैसिलस सटलिस	बैसिट्रेसिन
बैसिलस पालीमिक्सा	पालीमिक्सिन
स्ट्रेप्टोमाइसीज पर्ववुलस	एक्टीनोमाइसिन डी
स्ट्रेप्टोमाइसीज नोडोडस	फुगीजोन
स्ट्रेप्टोमाइसीज वेनीजुएली	क्लोरमफेनिकाल
स्ट्रेप्टोमाइसीज आरिओफेसीअंस	क्लोरटेट्रासाइक्लीन (आरियोमाइसिन)
	टेट्रासाइक्लीन

स्ट्रेप्टोमाइसीज इरीथ्रस	इरीथ्रोमाइसिन
स्ट्रेप्टोमाइसीज केनामाइसिटिकस	केनामाइसिन
स्ट्रेप्टोमाइसीज फ्रेडी	नियोमाइसिन
स्ट्रेप्टोमाइसीज नोरसी	निस्टेटिन (माइकोस्टेटिन)
स्ट्रेप्टोमाइसीज रिमोसस	आक्सीटेट्रासाइक्लीन (टेरामाइसिन)
स्ट्रेप्टोमाइसीज ग्रिसीयस	स्ट्रेप्टोमाइसिन
माइक्रोमोनोस्पोरा परप्यूरी	जेंटामाइसिन
सिफैलोस्पोरियम (कवक)	सिफैलोस्पोरिन
पेनिसिलियम ग्रीसोफुलवम (कवक)	ग्रीसोफुलविन
पेनिसिलियम नोटेटेम (कवक)	पेनिसिलीन

दैनिक जीवन में काम आने वाले कुछ एंटीबायोटिक का संक्षिप्त विवरण

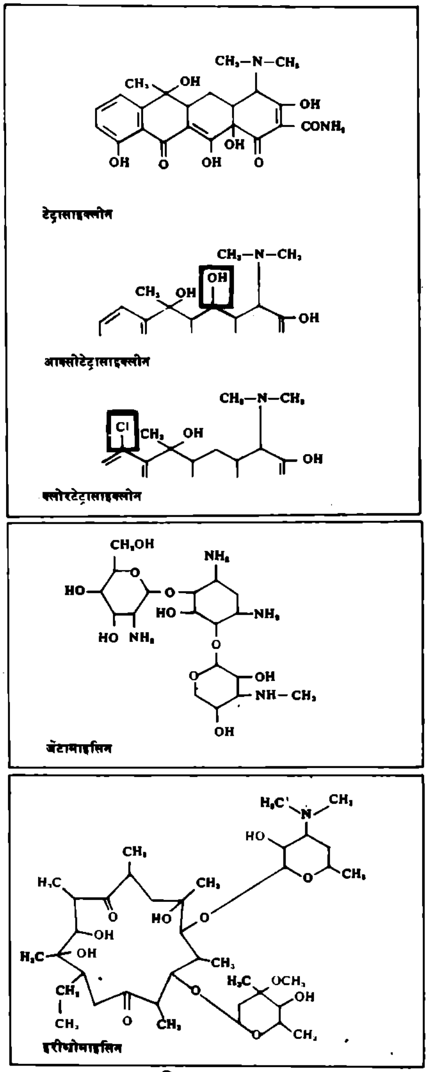
1. **पेनिसिलीन** : पेनिसिलीन का उपयोग घाव में पस बनाने वाले **स्टेफाइलोकोक्काई** नामक जीवाणु की शरीर में वृद्धि रोकने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग अन्य गोलाकार जीवाणु जैसे **स्ट्रेप्टोकोक्काई** और **निसीरिया** जो कि न्यूमोनिया और गोनेरिया जैसे रोग उत्पन्न करते हैं, को रोकने के लिए भी किया जाता है। यह एंटीबायोटिक उन कुछ एंटीबायोटिकों में से एक है जिसका सबसे ज्यादा उपयोग बीमारियों की रोकथाम के लिए किया जाता है। पिछले कुछ दशकों में यह पता चला है कि स्ट्रेफाइलोकोक्काई एवं स्ट्रेप्टोकोक्काई की कुछ जातियाँ इस दवा की प्रतिरोधी (Drug Resistant) बन गयी हैं। ये जीवाणु "पेनिसिलीनेज" नामक एक एंजाइम बनाते हैं जो कि पेनिसिलीन के "आधारभूत केन्द्रक" को तोड़कर पेनिसिलीन को नष्ट कर



चित्र 12.

देते हैं। इस प्रकार पेनिसिलीन अवरोधी जीवाणुओं पर पेनिसिलीन का प्रभाव नहीं पड़ता साथ में यह भी पाया गया है कि बहुत से मनुष्यों में पेनिसिलीन के प्रति "एलर्जी" उत्पन्न होने लगती है और इस "एलर्जी" (Allergy) का प्रभाव इतना तीव्र उठता है कि रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। इसको देखते हुए बहुत से देशों ने तो पेनिसिलीन के उपयोग पर रोक लगा दी है परन्तु विकसित देशों में अब भी इसका उपयोग हो रहा है। पेनिसिलीन के तरह की ही कुछ आज संश्लेषित औषधियाँ उपलब्ध हैं (चित्र 12) जैसे पेनिसिलीन अवरोधी जीवाणुओं को मारने के लिए "मेथिसिलीन" (एक प्रकार की पेनिसिलीन) का उपयोग हो रहा है। इसी तरह "ऐम्पीसिलीन" नामक पेनिसिलीन, कोकाई के अलावा अन्य प्रकार के जीवाणुओं को भी मारने में सक्षम है।

2. **स्ट्रेप्टोमाइसिन** : स्ट्रेप्टोमाइसिन ग्रीसस जीवाणुओं से तैयार किये जाने वाले स्ट्रेप्टोमाइसिन नामक एंटीबायोटिक का उपयोग टी० बी० जैसे भयानक रोग के उपचार के लिए किया जाता है। वैसे तो "स्ट्रेप्टोमाइसिन" (चित्र 12) एक अहानिकर पदार्थ है परन्तु यदि इसका उपयोग काफी समय तक किया जाए तो आठवीं मस्तिष्क नाड़ी को नुक्सान पहुंचता है तथा इसकी वजह से रोगी में बहरापन उत्पन्न हो सकता है।
3. **क्लोरमफेनिकाल (क्लोरोमाइसिटीन)** : यही ऐसा एंटीबायोटिक है (चित्र 12) जो कि बहुत प्रकार के जीवाणुओं को शरीर के अंदर नष्ट करने की क्षमता रखता है। इसका मुख्य उपयोग टायफाइड जैसे रोगों के उपचार में किया जाता है। परन्तु लम्बे समय तक उपचार में प्रयुक्त होने पर क्लोरमफेनिकाल किसी-किसी रोगी में रक्त कोशिकाओं के उत्पादन (प्लास्टिक एनीमिया) को प्रभावित करता है।
4. **टेट्रासाइक्लीन** : क्लोरटेट्रासाइक्लीन, आक्सीटेट्रासाइक्लीन तथा टेट्रासाइक्लीन के



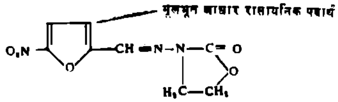
चित्र 12. अ

संगठन का मूल आधार एक-सा है और रासायनिक एवं शारीरिक प्रभाव में भी लगभग वे एक से हैं। इन तीनों का रासायनिक संगठन चित्र 12 अ में दर्शाया गया है। ये तीनों एंटीबायोटिक कई प्रकार के जीवाणुओं को मारने में सक्षम हैं। अंतड़ियों की सामान्य बीमारियों, बुखार, फेफड़े के सामान्य जीवाणुक - रोगों को रोकने में टेट्रासाइक्लीन बहुत उपयोगी पाया गया है। यह भी देखा गया है कि इसके बहुत अधिक उपयोग से जीवाणु इसके प्रभाव के प्रति अवरोधी हो जाते हैं।

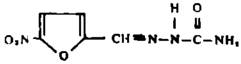
5. **जेंटामाइसिन** : जेंटामाइसिन (चित्र 12 अ) आम रोगों के उपचार के लिए बहुत ही उपयोगी पाया गया है। साथ में यह भी देखा गया है कि शरीर में स्यूडोमोनास एरूजिनोसा नामक जीवाणु से उत्पन्न रोगों के उपचार के लिए जेंटामाइसिन बहुत ही महत्वपूर्ण एंटीबायोटिक है।
6. **इरीथ्रोमाइसिन** : स्ट्रेप्टोकोक्क्स और स्टेफाइलोकोक्क्स जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों के उपचार के लिए इरीथ्रोमाइसिन का उपयोग पेनिसिलीन से भी ज्यादा किया जाने लगा है। गोनोरिया जैसे रोगों के उपचार के लिए अब इरीथ्रोमाइसिन का उपयोग सर्वाधिक होता है। यह देखा गया है कि माइकोप्लाज्मल न्यूमोनिया के उपचार के लिए इससे अच्छी दवा नहीं है। इरीथ्रोमाइसिन को मुंह से लिया जाता है तथा इंजेक्शन की जरूरत नहीं होती।

कुछ अन्य संश्लेषित औषधियां (जो जीवाणुओं से नहीं बनाई जाती)

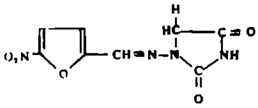
नाईट्रोफुरान : जीवाणु हनन के लिए इस औषधि का उपयोग बहुत किया जाता है। इस औषधि के कई प्रकार हैं (चित्र 13) परन्तु इनका मुलभूत रासायनिक आधार "फरप्यूरल" नामक पदार्थ है। "फरप्यूरल" पदार्थ एवं अन्य रासायनिक समूहों को इसके 1000 से ज्यादा पदार्थ जोड़कर बनाये जा चुके हैं। इसके तीन मुख्य प्रकार- फूराजोलिडोन, नाइट्रोफुराजोन और नाइट्रोफुरनट्वाइन का उपयोग औषधि के क्षेत्र में मूत्र संस्थान के



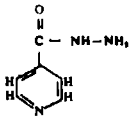
फुराजोलिडोन (फुरोक्साजोन)



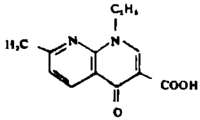
नाइट्रोफराजोन (फुरासिन)



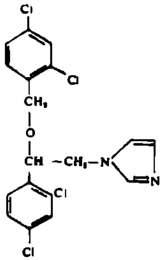
नाइट्रोफुरनट्वाइन (फुराडेंटिन)



आइसोनियेजाइड (आई. एन. एच.)



नैलिडिक्सिक एसिड



माइकोनेज़ोल (इमिडिज़ोल का आधार)

चित्र 13.

संक्रमण को रोकने के लिए किया जाता है। यही नहीं इन पदार्थों का उपयोग कवकों द्वारा त्वचा के रोगों को रोकने, प्रोटोजुआ से होने वाले रोगों को रोकने एवं आंत्र रोगों को रोकने में भी बहुतायत से किया जाता है।

आइसोनियेजाइड : यह संश्लेषित पदार्थ मनुष्यों में टी० बी० रोग को रोकने में बहुत अधिक उपयोग में लाया जाता है (चित्र 13)। इसका उपयोग टी० बी० उपचार में स्ट्रेप्टोमाइसिन नामक एंटीबायोटिक के साथ बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। टी० बी० से बचाव के लिए इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

नैलिडिक्सिक एसिड : यह नव- संश्लेषित पदार्थ मूत्र- संस्थान में संक्रमण रोकने के लिए बहुत लाभकारी पाया गया है (चित्र 13)। यह जीवाणुओं का हनन, उनमें उपस्थित न्यूक्लीइक अम्ल के बनने को रोक कर करता है। इसका अधिक उपयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो सकता है।

अध्याय 7

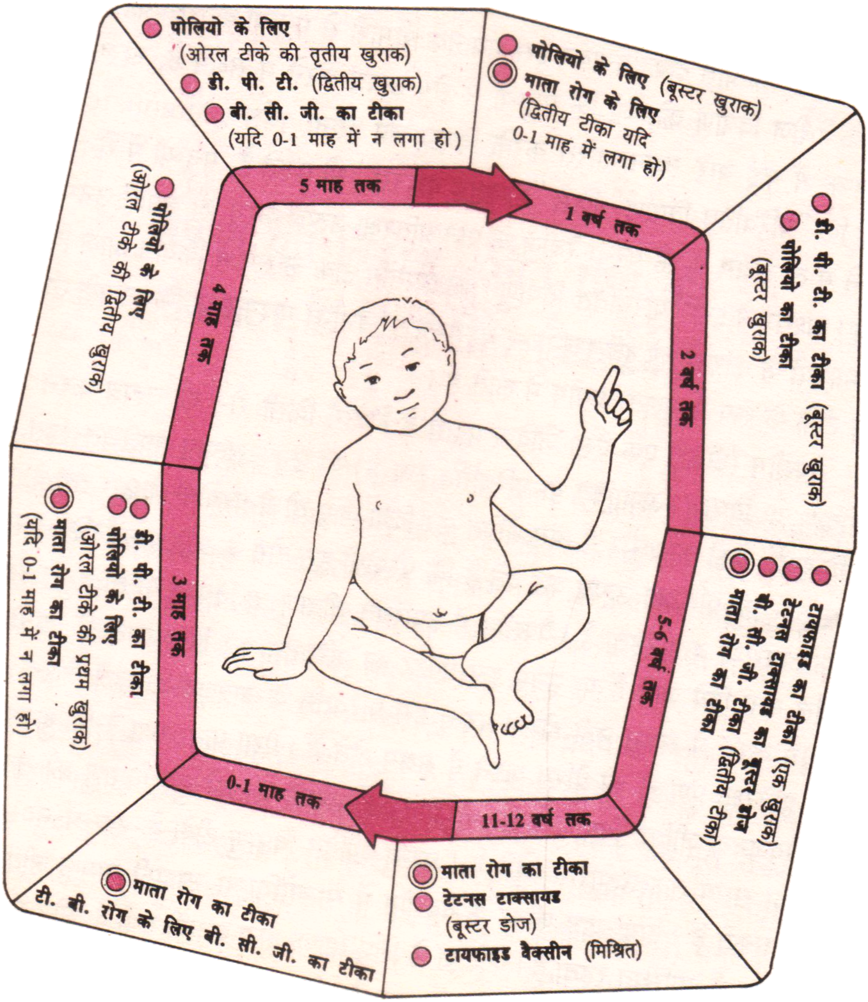
जीवाणु एवं विषाणु जनित रोगों की रोकथाम के लिए टीके (वैक्सीन)

आजकल रेडियो एवं टैलीविजन में बार बार यह सुनने में आता है कि क्या आपने अपने बच्चों को पोलियो, टेटनस और काली खाँसी का टीका लगवाया है ? नहीं लगवाया है तो नजदीक के अस्पताल में जाकर फौरन लगवायें । न लगवाने पर आपका शिशु पोलियो, टेटनस और काली खाँसी का शिकार हो सकता है और मृत्यु भी हो सकती है । यह टीका क्या है ? आइये इस विषय पर हम यहां बात करते हैं ।

जेनर ने मनुष्यों में चेचक रोग को नियंत्रित करने के लिए प्रथम बार सन् 1796 में इसके प्रति टीका विकसित किया । उन्होंने मनुष्यों के इस विषाणु जनित रोग के लिए टीका बनाने के लिए गाय के चेचक रोग के विषाणुओं का उपयोग किया । इसके पीछे मूल सिद्धांत यह था कि गाय में चेचक रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु मनुष्यों में चेचक रोग उत्पन्न करने में सक्षम नहीं होते परन्तु यदि उन्हें (गाय के चेचक रोग के विषाणुओं को) मनुष्यों में अंतःक्षेपित किया जाए तो वे मनुष्यों में चेचक रोग के प्रति इतनी रोग- रोधक- क्षमता (प्रतिरक्षा Immunity) बढ़ा देते हैं कि टीके लगे मनुष्य में चेचक रोग उत्पन्न नहीं हो

सकता है। कुछ इन्हीं सिद्धांतों का उपयोग करके श्री पाश्चर ने 1885 में कुत्ते के भयानक रोग "रैबीज" के प्रति टीका बनाकर इस भयानक बीमारी से मनुष्यों की रक्षा की। उन्होंने कुत्ते के रैबीज विषाणु को, जो कि मनुष्यों में रोग उत्पन्न करने में सक्षम हैं, खरगोशों के मस्तिष्क में कई बार स्थानान्तरित करके विषाणु को इतना दुर्बल (Attenuate) बना दिया कि "परिवर्तित विषाणु" जिसे "फिक्स्ड वाइरस" भी कहते हैं, मनुष्यों में रोग उत्पन्न करने में तो सक्षम न रहे परन्तु रैबीज के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न करने की क्षमता उनमें बनी रही। पाश्चर ने इस "परिवर्तित विषाणु" का उपयोग टीके के रूप में किया। आज विभिन्न बीमारियों के कारकों को दुर्बल बनाकर या उन्हें रसायनों से मारकर या फिर उनके उत्पादों को टीके के रूप में मूलतः प्रयोग में लाते हैं।

वैक्सीन (टीका) एक ऐसा जैविक पदार्थ है जिसमें किसी रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु या विषाणु (अजीवित या परिवर्तित रूप में) या उनके उत्पाद उपस्थित रहते हैं। यदि इन्हीं टीकों को शरीर में अंतःक्षेपित कर दिया जाए तो ये परपोषी में उस रोग के प्रति इस स्तर की प्रतिरक्षा उत्पन्न कर देते हैं कि परपोषी इस रोग के प्रति एक निश्चित समय तक अवरोधी बना रहता है। वैक्सीन में उपस्थित जीवाणु या विषाणु या तो बहुत अधिक दुर्बल बना दिये जाते हैं या उनमें इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाता है कि वे रोग उत्पन्न करने में सक्षम नहीं होते। परन्तु इस परिवर्तन के बावजूद वे बदले कारक शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को प्रेरित करने में सक्षम होते हैं। ऐसा पाया गया है कि दुर्बल और अरोगजनक जीवित विषाणु शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मरे हुए विषाणु की तुलना में ज्यादा समय तक उत्प्रेरित करते हैं। परन्तु जीवित विषाणु टीके के रूप में नुक्सान भी कर सकते हैं। टायफाइड फीवर के वैक्सीन में **साल्मोनिल्ला टाइफी** नामक जीवाणु मृत अवस्था में उपस्थित रहता है। पोलियो के लिए साल्क द्वारा बनायी गयी वैक्सीन में पोलियो के विषाणु मृत अवस्था में रहते हैं और यह वैक्सीन बच्चों को मुंह के द्वारा पोलियो ड्राप



पोलियो के लिए (ओरल टीके की तृतीय खुराक)
डी. पी. टी. (द्वितीय खुराक)
बी. सी. जी. का टीका (यदि 0-1 माह में न लगा हो)
पोलियो के लिए (बूस्टर खुराक)
माता रोग के लिए (द्वितीय टीका यदि 0-1 माह में लगा हो)
5 माह तक
1 वर्ष तक
डी. पी. टी. का टीका (बूस्टर खुराक)
पोलियो का टीका (बूस्टर खुराक)
पोलियो के लिए (ओरल टीके की द्वितीय खुराक)
4 माह तक
2 वर्ष तक
डी. पी. टी. का टीका
पोलियो के लिए (ओरल टीके की प्रथम खुराक)
माता रोग का टीका (यदि 0-1 माह में न लगा हो)
3 माह तक
5-6 वर्ष तक
टायफाइड का टीका (एक खुराक)
टेटनस टाक्सायड का बूस्टर डोज
बी. सी. जी. टीका (द्वितीय टीका)
माता रोग का टीका
0-1 माह तक
11-12 वर्ष तक
माता रोग का टीका
टी. बी. रोग के लिए बी. सी. जी. का टीका
माता रोग का टीका
टेटनस टाक्सायड (बूस्टर डोज)
टायफाइड वेक्सीन (मिश्रित)

चित्र 14.

के रूप में दी जाती है। पीत- ज्वर के विषाणु मुर्गी के अंडों में स्थानान्तरित करके दुर्बल बनाये जाते हैं और फिर इसका उपयोग वैक्सीन के रूप में होता है। कुछ टीकों के नाम जो मनुष्यों में प्रयुक्त होते हैं, इस प्रकार हैं :

1. डी० पी० टी० — डिप्थीरिया, परट्यूसिस (काली खाँसी), टिटेनस वैक्सीन
2. डी० टी० — डिप्थीरिया, टेटेनस वैक्सीन
3. डी० पी० — डिप्थीरिया, परट्यूसिस वैक्सीन
4. टी० ए० बी० — टायफाइड- पैरा ए और बी
5. बी० सी० जी० — टी० बी० के लिए वैक्सीन

भारत में बच्चों को विभिन्न रोगों से बचाने के लिए टीकों के कार्यक्रम की संस्तुति निम्न रूप में की गयी है। (चित्र 14)

उम्र	टीका
0-1 माह तक	माता (चेचक) रोग, बी० सी० जी० (टी० बी० के लिए)
3 माह	डी० पी० टी०
	ओरल पोलियो (प्रथम खुराक), चेचक रोग के लिए यदि 0-1 माह में न लगा हो।
4 माह	ओरल पोलियो (द्वितीय खुराक)
5 माह	ओरल पोलियो (तृतीय खुराक)
	डी० पी० टी० (द्वितीय खुराक)
	बी० सी० जी० का टीका (यदि 0-1 माह में न लगा हो)
1 वर्ष	ओरल पोलियो (बूस्टर खुराक)
	चेचक रोग के लिए (द्वितीय टीका यदि 0-1 माह में न लगा हो)

2 वर्ष	डी० पी० टी० और पोलियो की बूस्टर खुराक
5-6 वर्ष	टायफाइड का टीका (एक खुराक)
	टेटनस टाक्साइड का बूस्टर डोज़
(स्कूल में प्रवेश पाने	बी० सी० जी० (द्वितीय टीका)
वाले बच्चों के लिए)	चेचक रोग के लिए (फिर टीका)

डाक्टर की राय के बाद ही चेचक रोग का टीका लगवाना चाहिए।

11-12 वर्ष	चेचक रोग का फिर टीका
बेसिक स्कूल छोड़ने	टेटनस टाक्साइड का बूस्टर
वाले बच्चों के लिए	टायफाइड वैक्सीन (मिश्रित)

रैबीज का टीका : पागल कुत्तों के काटने से हर वर्ष हमारे देश में हजारों लोग मरते हैं। इससे बचाव के लिए अब तक सबसे ज्यादा प्रयुक्त होने वाला टीका "पाश्चर वैक्सीन" है जिसमें पेट के ऊपर की त्वचा में 14 इंजेक्शन लगाये जाते हैं। इस टीके में खरगोश का मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी जिसमें रैबीज के विषाणु को मार दिया जाता है उपस्थित होते हैं। इसके 14 टीके लगने में बहुत कष्ट होता है तथा कभी- कभी टीके के कारण रोगी मनुष्य के शरीर में खरगोश के शरीर में मस्तिष्क एवं सुषुम्ना ऊतकों की वजह से एलर्जी उत्पन्न हो सकती है और इसके कारण पैरालिसिस के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु टीके के ऐसे लक्षण लाखों में केवल एकाध को ही हो सकता है। हाल ही में रैबीज के प्रति टीका बनाने की एक नई विधि का विकास हुआ है। इस नये टीके को "ह्यूमन डिप्लायड सैल वैक्सीन" कहते हैं। इसमें रैबीज विषाणु को "ह्यूमन डिप्लायड कोशिका" संवर्ध वृद्धि करते हैं। फिर इस उत्पाद में विषाणुओं को रासायनिक विधि से मार देते हैं। टीके के रूप में "ह्यूमन डिप्लायड सैल वैक्सीन" का उपयोग रैबीज के उपचार के लिए

बढ़ता जा रहा है क्योंकि इस टीके को पेट में लगाने के बजाय हाथ की मांसपेशी में और केवल पांच इंजेक्शन ही लगाते हैं। यह भी पाया गया है कि इस टीके से एलर्जी या पैरालिसिस के लक्षण उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता तथा इससे उत्पादित रैबीज रोग के प्रति अवरोध अच्छे स्तर का तथा बहुत लम्बे समय तक का होता है।

